Chapter-1

प्रथम् अध्याय

विषय - प्रवेश

प्रास्ताविक :-

साहित्य की व्यापकतम परिभाषा के अनुसार तो संसार के तमाम विषय जिनका संबंध मानव-जीवन के ज्ञान-विज्ञान एवं प्रसादन से है, ''साहित्य'' संज्ञा के अन्तर्गत आते हैं। किन्तु हमारे यहाँ के आचार्यों ने इस व्यापक रूप वाले साहित्य को दो विभागों में वर्गीकृत किया है - काव्य और शास्त्र। 'काव्य' शब्द साहित्य का ही समानार्थी है। कुछ लोग काव्य का अभिप्राय केवल 'पद्य-साहित्य' से ही लेते हैं- किन्तु यह उपयुक्त नहीं है। हमारे यहाँ 'काव्य' में साहित्य के सभी रूप समाविष्ट हो जाते हैं। पद्य के साथ गद्य की विधाएँ भी उसके अन्तर्गत आती हैं। डॉ. गुलाबराय के सैद्धान्तिक आलोचना के ग्रन्थ ''काव्य के रूप'' में न केवल पद्य-रूप, अपितु गद्य-रूपों की भी चर्चा की गई है। कहने का अभिप्राय यह है कि काव्य या साहित्य में- जिसे हम रूढ़ अर्थों में साहित्य कहते हैं, उसके तमाम प्रकार एवं विधाएँ अन्तर्निहित हो जाती हैं। शास्त्र में उन विषयों को लिया जाता है जो ललितेतर क्षेत्र के हैं और अधिकांशतः जिनका उद्देश्य ज्ञान-विज्ञान के प्रचार-प्रसार और अनुसंधान

से है। अंग्रेजी के आलोचक डिक्केन्सी ने उपर्युक्त "शास्त्र" और "काव्य" को क्रमशः "Literature of knowledge" तथा "Literature of Power" कहा है। प्रथम का कार्य ज्ञान देना है, जबकि दूसरे का कार्य मानव-जीवन को परिचालित और प्रभावित करना है।

इस प्रकार जिसे हम रूढ़ अर्थ में साहित्य "Literature" कहते हैं, वह हमारी परंपरा में प्राचीन समय से उपलब्ध हो रहा है। प्रथमतः साहित्य हमें संस्कृत भाषा में उपलब्ध होता है। संस्कृत के पश्चात् पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं का साहित्य हमारे सामने आता है। इन्हीं अपभ्रंश भाषाओं से हिन्दी साहित्य निःसृत हुआ है। इस प्रकार यदि मोटे तौर पर देखा जाय तो हिन्दी का साहित्य लगभग एक हजार वर्षों से उपलब्ध हो रहा है।

जिस प्रकार मनुष्य में आनुवंशिक गुण या दुर्गण उतर आते हैं, ठीक उसी प्रकार किसी देश, राष्ट्र या समाज के साहित्य में भी उसकी पूर्ववर्ती परंपराओं और प्रवृत्तियों के विशेष अभिलक्षण उतर आते हैं। यदि हम भारतीय साहित्य पर एक विहंगम दृष्टिपात करें तो आधुनिक आर्यभाषाओं के साहित्य में हमें पूर्ववर्ती साहित्यिक प्रवाहों और प्रवृत्तियों का अभिदर्शन हुए बिना नहीं रहेगा। साहित्य चाहे गुजराती का हो, हिन्दी का हो, मराठी, बंगला या किसी अन्य भारतीय भाषा का हो, उनमें हमारी पूर्ववर्ती परंपरा किसी न किसी रूप में झांकती हुई-सी दृष्टिगत होती है। हमारे साहित्य के उपजीव्य ग्रन्थों में वेद-वेदांग का साहित्य, पुराण, रामायण, महाभारत, भागवत, बौद्ध साहित्य, जैन साहित्य प्रभृति को परिलक्षित कर सकते हैं। इस प्रकार हमारे पास एक समृद्ध साहित्यिक परंपरा है जो बीज रूप में समूचे भारतीय साहित्य में परिव्याप्त है। यही कारण है कि हमारे साहित्य में अहिंसा, त्याग, बलिदान, करूणा, उदारता, सहिष्णुता, हृदयगत विशालता जैसे उदात्त मानवीय गुणों की प्रतिष्ठा मिलती है।

हिन्दी साहित्य का प्रारंभ प्रायः एक हजार वर्ष पूर्व हो गया था।

साहित्य की यह अजस्र धारा आदिकाल, मध्यकाल तथा आधुनिक काल से होते हुए अद्यावधि तक प्रवाहमान है। हमारे शोध-प्रबंध का संबंध आधुनिक काल की कहानी विधा से है। अतः हम अपनी चर्चा वहीं से आरंभ करें तो अधिक उपयुक्त होगा।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल का प्रारंभ १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से माना गया है। यह समय अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण एवं राजनीतिक-सांस्कृतिक दृष्टि से उथल-पाथल का रहा है। प्रथम स्वाधीनता संग्राम हो चुका था। उसके क्रांतिकारी देशी शासक पराजित हो चुके थे। कंपनी सरकार के स्थान पर ब्रिटिश शासन लागू हो गया था। इस प्रकार ब्रिटिश शासन और अधिक सुदृढ़ हो गया था। इसके पूर्व सन् १८०१ में कलकत्ते में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना हो चुकी थी। मैकाले शिक्षा-नीति के तहत कलकत्ता युनिवर्सिटी, डेक्कन युनिवर्सिटी, बनारस युनिवर्सिटी, बाम्बे युनिवर्सिटी प्रभृति विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई और अंग्रेजी शिक्षा-नीति के कारण भारत में नौकरीपेशा मध्यमवर्ग का उदय हुआ। मध्यवर्ग का उदय, औद्योगीकरण, नगरीकरण, अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार-प्रसार, मुद्रणकला का विकास, गद्य का प्रचार-प्रसार-विकास, पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन और इन सबके साथ-साथ ब्रह्मोसमाज, प्रार्थना समाज, आर्यसमाज, थियोसोफिकल सोसायटी जैसी सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक जीवन में एक नयी चेतना का संचार हुआ। आधुनिकता के अग्रदूत राजा राममोहनराय, केशवचन्द्र सेन, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, देवेन्द्रनाथ ठाकुर, स्वामी दयानंद सरस्वती, महादेव गोविन्द रानडे, पंडिता रमाबाई, ज्योतिबा फुले, श्रीमती एनीबेसेन्ट, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, गोपालकृष्ण गोखले, लोकमान्य तिलक, महात्मागाँधी जैसे महानुभावों के प्रयत्नों से युग एक नयी करवट लेता है।

यहाँ यह उल्लेखनीय रहेगा कि ब्रिटिश शासन में ब्रिटिश शासकों अफसरों, शिक्षा शास्त्रियों के साथ-साथ ईसाई धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए

ईसाई धर्म प्रचारक पादरी वगैरह भी आये थे । उन्होंने अपने धर्म के प्रचार-प्रसार हेतु हिन्दू धर्म में प्रचलित कुछ रूढ़ियों और रीति-रिवाजों पर प्रहार करने शुरू किये । तत्कालीन समाज में धर्म को लेकर ऐसी अनेक मान्यताएँ प्रवर्तमान थीं जिनका ज्ञान-विज्ञान, तर्क या संगति से कुछ लेना-देना न था, बल्कि कुछ मान्यताएँ तो मानवता-विरोधी थीं । जाति प्रथा को लेकर ऊँच-नीच का संस्तरण, अस्पृश्यता, सतीप्रथा, दहेजप्रथा, वृद्ध विवाह, अनमेल विवाह, विधवा विवाह का विरोध, दलितों पर थोपी गयी अनकानेक सामाजिक,धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक निर्योग्यताएँ (Disabilities ये कुछ ऐसे छिद्र थे जिन पर विदेशी धर्म-प्रचारक आसानी से धावा बोल सकते थे । ऊपर जिन सामाजिक-धार्मिक संस्थाओं और महानुभावों का उल्लेख किया गया है, उन्होंने हिन्दू धर्म के सत्य-स्वरूप या मूल-स्वरूप को उद्घाटित करने का प्रयत्न किया । फलतः समाज के प्रबुद्ध वर्ग में दो स्पष्ट विभाग दृष्टिगोचर होने लगे । एक था पुरातनपंथी या सनातनधर्मी वर्ग, जो प्राचीनता का आग्रही था । वे किसी प्रकार के परिवर्तन को हिन्दू समाज के लिए हितकर नहीं मानते थे । दूसरी तरफ ऐसे लोग थे जो नव्य समाज की रचना करना चाहते थे और धार्मिक मुद्दो पर विचार-विमर्श करते हुए उनमें से मानवता-विरोधी तत्वों को हटाते हुए उन्हें नया प्रगतिवादी आयाम देना चाहते थे । उनको हम नवसुधारवादी भी कह सकते हैं ।

१९ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारतीय इतिहास में जो नवसुधार की प्रक्रिया शुरू होती है उसकी पृष्ठिभूमि में उल्लिखित स्थितियों एवं महानुभावों के योगदान को नकारा नहीं जा सकता । इन आंदोलनों और महानुभवों के कारण ही आधुनिक युग अपने पूर्व के युगों से कई मामलों में अलग पड़ता है । ज्ञान-विज्ञान के नये क्षितिज उद्घाटित होते हैं । विज्ञान, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान के क्षेत्र में मानो क्रान्ति होती है और प्रत्येक विषय को वैज्ञानिक एवं विश्लेषणात्मक ढंग से देखने का एक नजरिया विकसित होता है । यद्यपि आधुनिक काल में विचार-विमर्श और चिंतन के क्षेत्र में अनेक आयाम दृष्टिगत

होते हैं, तथापि इनके दो विमर्शों को रेखांकित किया जा सकता है। ये दो विमर्श हैं- नारी विमर्श और दलित विमर्श। आधुनिककाल अनेक क्रांतिकारी विचारों का उद्गम स्थान भी है। आधुनिक काल की एक प्रमुख घटना है - गद्य का विकास। न केवल हिन्दी में अपितु प्रायः सभी भारतीय भाषाओं में आधुनिक काल के पूर्व गद्य की बहुत ही क्षीण पतली और क्षुण्णप्राय धारा मिलती है, गद्य की अक्षुण्ण धारा सर्वप्रथम आधुनिककाल में मिलती है। यही कारण है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल आधुनिक काल का नामाभिधान ''गद्यकाल'' के रूप में करते हैं।[१]

मुद्रण कला का विकास तथा पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन के कारण हिन्दी गद्य अभूतपूर्व गति से आगे बढ़ता है। यहाँ तक कि साहित्य के इतिहास में पूरा समीकरण ही बदल जाता है। आधुनिककाल के पूर्व रीतिकाल तक गद्य-साहित्य का परिमाण ०.०१ प्रतिशत था, किन्तु आधुनिककाल में यह परिमाण बढ़ते-बढ़ते लगभग ७०-८० प्रतिशत हो जाता है।

अंग्रेजों का राज्य स्थापित होने के कारण हमारे यहाँ का प्रबुद्ध वर्ग अंग्रेजी साहित्य से अभिज्ञ होने लगता है। फलतः अंग्रेजी साहित्य की अनेकानेक गद्य-विधाएँ भारतीय भाषाओं में, अतएव हिन्दी में भी, उतर आती हैं। इन गद्य-विधाओं में उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध, समालोचना, जीवनी, संस्मरण, रिपोर्ताज आदि हैं।

ऊपर आधुनिककाल के संदर्भ में जो सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक परिप्रेक्ष्य से संबद्ध जो टिप्पणी की गई है, उससे जाहिर तौर पर एक तथ्य उभरकर आता है कि लेखकों को अपनी लेखनी चलाने हेतु नये-नये विषय भी मिल जाते हैं और साहित्य सीधे मानवीय मूल्यों और सरोकारों से सम्बद्ध होने लगता है। अब वह ''भरे भौन में करत है, नयनन ही सों बात'' वाली मानसिकता से बाहर निकलकर ''वह तोड़ती पत्थर, देखा मैंने इलाहाबाद के पथ पर'' वाली मानसिकता और चिन्तनधारा से जुड़ती है। लेखन के विषय साहित्य के इतिहास में पहली बार बहुआयामी

होने लगते हैं। अब लेखक ''नायिका भेद'' और ''नखशिख वर्णन'' की कारा से मुक्त होकर समाज के प्राण-प्रश्नों से सीधे जूझने लगते हैं। नारी-शिक्षा, दलित-विमर्श, अनमेल-विवाह, वृद्ध विवाह, बाल-विवाह, विधवा-विवाह की पक्षधरता, जातिवाद का विरोध, हिन्दू-मुस्लिम एकता की हिमायत जैसे अनेकानेक विषयों का एक बृहद आकाश खुलने लगता है। विशेषतः उपन्यास, कहानी, नाटक और निबंध जैसी विधाओं में समाज-सुधार की यह प्रवृत्ति विशेष रूप से पल्लवित होने लगती है।

हमारे शोध-प्रबंध का विषय कहानी विधा से संबद्ध है, अतः हम उस पर विशेष रूप से विचार करने का उपक्रम रखेंगे।

गद्य का विकास और कहानी विधा :-

कहानी की परिगणना कथा-साहित्य के अन्तर्गत होती है और कथा-साहित्य का विकास तभी होगा जब किसी भाषा का गद्य पर्याप्त समुन्नत हो और जो विवरण, विश्लेषण, प्रकथन तथा तर्क-वितर्क के लिए उपयुक्त समझा जाए। आधुनिककाल के पूर्व आदिकाल, भक्तिकाल तथा रीतिकाल में हिन्दी गद्य की कुछ रचनाएँ उपलब्ध होती हैं, किन्तु जैसाकि ऊपर निर्दिष्ट किया गया है, उनका परिमाण अत्यन्त क्षीण और क्षुल्लक प्रकार का है। वह गद्य भी खड़ीबोली गद्य न होकर, प्रायः ब्रजभाषा का गद्य है। कहानी विधा का विकास तो खड़ीबोली गद्य में ही हुआ है। यद्यपि खड़ीबोली गद्य का आविर्भाव आधुनिककाल में लल्लूलाल गुजराती, पंडित सदल मिश्र, मुंशी सदासुखलाल तथा इंशाअल्लाखां जैसे लेखकों द्वारा संपन्न हुआ है, तथापि उनसे पूर्व रामप्रसाद निरंजनी का गद्य खड़ीबोली गद्य के बहुत निकट का है ऐसा कहा जा सकता है। निरंजनी जी की भाषा ओर आज की प्रचलित हिन्दी में बहुत अधिक अंतर नहीं है। उनके 'भाषा योगवासिष्ठ' ग्रंथ को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी गद्य का आदि ग्रंथ कहा है। ''भाषा-योगवासिष्ठ'' के गद्य का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है-

''हे रामजी ! जो पुरुष अभिमानी नहीं है वह शरीर के इष्ट-अनिष्ट में

राग-द्वेष नहीं करता क्योंकि उसकी शुद्ध वासना है। मलीन वासना जन्मों का कारण है। ऐसी वासना को छोड़कर जब तुम स्थित हो तब तुम कर्ता हुए भी निर्लेप रहोगे। और हर्ष, शोक आदि विकारों से जब तुम अलग रहोगे तब वीतराग, भय,क्रोध से रहित रहोगे। जिसने आत्मतत्व पाया है, वह जैसे स्थित हो वैसे तुम भी स्थित हो। इस दृष्टि को पाकर आत्मतत्व को देखो। तब विगतज्वर होने और आत्मपद को पाकर फिर जन्म-मरण के बंधन में न आओगे।''[२]

रामप्रसाद निरंजनी पटियाला के थे और उन्होंने इस ग्रन्थ की रचना सन् १७४१ में की थी। किन्तु हिन्दी गद्य के आविर्भाव का व्यवस्थित सिलसिला तो फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना के साथ ही सन् १८०० ई. से होता है। फोर्टविलियम कॉलेज के अन्तर्गत हिन्दुस्तानी विभाग में जान गिलक्राइस्ट की अध्यक्षता में पंडित लल्लूलाल गुजराती तथा पंडित सदल मिश्र (बिहारी) की नियुक्ति होती है। पं. लल्लूलाल के ब्रजभाषासेवित गद्य का निर्माण किया तो पं. सदल मिश्र ने उस शैली को अंगीकृत किया था जो हमें रामप्रसाद निरंजनी में मिलती है। फोर्टविलियम कॉलेज से अलग दो लेखक और हैं जिनका नाम हिन्दी गद्य के प्रारंभिक पुरस्कर्त्ताओं में लिया जा सकता है। उनके नाम हैं- मुंशी सदासुखलाल तथा इंशा अल्लाखां। इन चार लेखकों ने हिन्दी गद्य को विकसित करने में अपना विशिष्ट योगदान दिया है। लल्लूलाल जी ने सन् १८०५ में भागवत के दशम स्कन्ध के आधार पर ''प्रेमसागर'' नामक गद्य ग्रन्थ की रचना की, तो सदल मिश्र ने उसी वर्ष ''नासिकेतोपाख्यान'' लिखा। मुंशी सदासुखलाल ने श्रीमदभागवत का ''सुखसागर'' के रूप में हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया तो इंशाअल्ला खां ने सन् १८०३ के आसपास ''रानी केतकी की कहानी'' की रचना की।[३]

जैसाकि ऊपर निर्दिष्ट किया गया है कि लल्लूलाल जी की भाषा पर ब्रजभाषा का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। उसमें कुछ उर्दू का पुट भी मिलता है। सदल मिश्र की भाषा कुछ पूरबीपन लिए हुए है। वह कुछ अधिक

व्यावहारिक तथा सुथरी है । मुंशी सदासुखलाल के गद्य में संस्कृत बहुलता तथा पांडित्य प्रदर्शन मिलता है तो इंशाअल्लाखां का गद्य उर्दू से प्रभावित है । इन चार लेखकों ने हिन्दी गद्य का प्रवर्तन तो किया, किन्तु खड़ीबोली गद्य की अखंड परंपरा तो सन् १८५७ के बाद से ही शुरू होती है ।[४]

उपर्युक्त चार लेखकों ने हिन्दी गद्य का प्रवर्तन तो कर दिया किन्तु इसकी अखंड परंपरा सन् १८५७ के बाद शुरू होती है । हिन्दी गद्य के इस विकास में ईसाई धर्म-प्रचारकों का योगदान भी उल्लेखनीय कहा जा सकता है । उनको ईसाई धर्म का प्रचार करना था, अतः उन्होंने हिन्दी भाषा का अध्ययन किया और ईसाई धर्म की पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद किया । इसकी प्रतिक्रिया के रूप में ब्रह्म समाजियों ने भी अपना प्रचार कार्य शुरू कर दिया । कहना न होगा कि ब्रह्मसमाज के प्रवर्तक और आधुनिक भारत के अग्रदूत राजा राममोहनराय ने हिन्दी के महत्व को बहुत पहले ही समझ लिया था । उन्होंने बंगाल से अन्य प्रदेशों में अपना प्रचार कार्य हिन्दी के माध्यम से किया तथा कुछेक हिन्दी ग्रन्थों की रचना भी की । उसी समय एक महत्वपूर्ण घटना घटित होती है - वह है पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन । उस समय उदण्ड मार्तण्ड, बंगदूत, प्रजामित्र, बनारस, बुद्धि प्रकाश जैसी अनेकानेक पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं । इन पत्रिकाओं ने हिन्दी गद्य को विकसित करने में अपना अपरिहार्य योगदान दिया ।

सन् १८५६ में अंग्रेजी शिक्षा विभाग में राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द एक बड़े अधिकारी के पद पर नियुक्त होते हैं । राजा साहब का हिन्दी-प्रेम गजब का था । उन्होंने स्वयं अनेक गद्य पुस्तकों की रचना की, इतना ही नहीं,अपने मातहत कर्मचारियों से भी उन्होंने कुछ गद्य पुस्तकों का प्रणयन करवाया । यहाँ इस बात का ध्यान रखा जाए कि राजा साहब अरबी-फारसी मिश्रित आमफहम की भाषा का समर्थन करते थे । दूसरे शब्दों में राजा साहब की हिन्दी महात्मा गाँधी की हिन्दी-हिन्दुस्तानी के अधिक निकट थी ।

जहाँ राजा शिवप्रसाद सिंह उर्दू-मिश्रित भाषा के पक्षधर थे, वहाँ राजा

लक्ष्मणसिंह शुद्ध हिन्दी के आग्रही थे । वे संस्कृत बहुला शब्दावली का प्रयोग करते थे । उन्होंने संस्कृत के महाकवि कालिदास के ''मेघदूत'' तथा ''अभिज्ञान शाकुन्तलम्'' का संस्कृनिष्ठ हिन्दी में अनुवाद किया । यह वही समय है जब पंजाब में ईसाई धर्म के प्रचार को रोकने तथा हिन्दू समाज को बचाने हेतु स्वामी दयानंद सरस्वती कार्यरत थे ।

स्वामी जी ने आर्यसमाज की स्थापना की । स्वामीजी संस्कृत के प्रकांड पंडित थे और शुरू में अपने व्याख्यान संस्कृत में ही देते थे, परन्तु बाद में ब्रह्मसमाजी नेता और समाज-सुधारक केशवचन्द्र सेन के आग्रह पर उन्होंने अपना प्रचार-कार्य हिन्दी भाषा में शुरू किया । इस प्रकार प्रकारान्तर से हिन्दी गद्य के विकास को एक गति मिली । दयानंद सरस्वती का ''सत्यार्थ प्रकाश'' आधुनिक खड़ीबोली गद्य का एक ज्वलंत उदाहरण है । वह कुछ अपवादों को छोड़कर आज भी आधुनिक गद्य की बराबरी कर सकता है । स्वामी जी के साथ-साथ नवीनचन्द्र राय तथा पंडित श्रद्धाराम फुल्लौरी आदि आर्य समाजी पंडित और विद्वान भी इस कार्य में लगे हुए थे । नवीनचन्द्र राय ने तो ''ज्ञान-प्रदायिनी-पत्रिका'' नामक एक पत्रिका का प्रकाशन भी करवाया । पंडित श्रद्धाराम फुल्लौरी ने ''आत्म-चिकित्सा'', ''उपदेश-संग्रह'', ''धर्मरक्षा'', ''तत्वदीपक'' प्रभृति पुस्तकों का प्रणयन किया । हिन्दी का प्रथम उपन्यास ''भाग्यवती'' पंडित श्रद्धाराम फुल्लौरी का लिखा हुआ है । यह उपन्यास नारी-शिक्षा को केन्द्र में रखते हुए लिखा गया है ।

इस प्रकार शनैः शनैः हिन्दी गद्य विकसित हो रहा था । भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के आविर्भाव से हिन्दी गद्य के विकास में एक नया आयाम जुड़ता है । भारतेन्दु बाबू का राष्ट्रप्रेम और हिन्दी-प्रेम अद्भुत था । उन्होंने अपनी करोड़ों की संपत्ति उसमें फूंक दी । भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का जन्म इतिहास-प्रसिद्ध अमीचन्द घराने में हुआ था । अतः भारतेन्दु बाबू कहा करते थे कि मेरे बाप-दादों ने लोगों का रक्त चूस के जिस संपत्ति को अर्जित किया है, उसका सदुपयोग करके मैं एक प्रकार से उनके पापों का प्रायश्चित कर रहा हूँ ।[५]

भारतेन्दु बाबू ने भारतेन्दु मण्डल की स्थापना की और अनेक लेखकों को लिखने के लिए प्रेरित किया। पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। हिन्दी में उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध जैसी विधाओं का प्रारम्भ हो गया और इन सब विधाओं के माध्यम से हिन्दी गद्य को बढ़ावा मिला। भारतेन्दु मंडल के लेखकों में लाला श्रीनिवासदास,प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, राधाकृष्णदास,राधाचरण गोस्वामी, किशोरीलाल गोस्वामी आदि मुख्य हैं। अतः कहा जा सकता है कि जो कार्य गुजराती में नर्मद ने किया, लगभग वही कार्य हिन्दी में भारतेन्दु जी ने किया। [६]

हिन्दी गद्य विकसित हो रहा था,किन्तु भारतेन्दु के समय तक उसका कोई सामान्य स्वरूप-मानक स्वरूप- सामने नहीं आया था। भारतेन्दु तथा भारतेन्दु मंडल के लेखकों के गद्य पर ब्रजभाषा का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। इसका एक कारण यह भी है कि भारतेन्दु युग के लेखक प्रायः कवि भी थे और उनकी काव्य भाषा ब्रजभाषा थी। अभी तक पद्य ओर गद्य की भाषा में एक समरसता स्थापित नहीं हुई थी। गद्य खड़ी में लिखा जाता था, पद्य ब्रजभाषा में। अतः न चाहते हुए भी ब्रजभाषा का प्रभाव गद्य में आ ही जाता था। व्याकरण की भी अनेक प्रकार की अनियमितताएँ प्रवर्तमान थी। पंडित श्रीधर पाठक ने उस समय खड़ीबोली का आंदोलन चलाया और हिन्दी के साहित्यकारों के सम्मुख यह मुहीम चलाई कि खड़ीबोली में भी कविता लिखी जा सकती है। इस प्रकार पंडित श्रीधर पाठक ने जहाँ गद्यभाषा और काव्य भाषा के भेद को मिटाया, वहाँ पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदीजी ने हिन्दी गद्य को व्याकरण-सम्मत करके उसे परिनिष्ठित एवं परिमार्जित करने का भगीरथ कार्य किया। [७] कदाचित इसीलिए हिन्दी वाले उनको हिन्दी के पाणिनि की उपाधि देते हैं। ''सरस्वती'' पत्रिका के माध्यम से उन्होंने अनेक लेखकों को प्रस्थापित किया और इस प्रकार हिन्दी गद्य को गति प्रदान करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी के बाद आचार्य रामचन्द्र शुक्ल,बाबू श्यामसुंदर दास, पं. माधवप्रसाद मिश्र, बाबू

गुलाबराय, पदुमलाल पन्नालाल बक्षी, पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, अध्यापक पूर्णसिंह तथा पद्मसिंह शर्मा जैसे विद्वानों, आलोचकों और निबंधकारों ने हिन्दी गद्य को अपने-अपने ढंग से विकसित किया।

यह एक सुविदित तथ्य है कि आधुनिक काल में अनेक विधाओं का विकास हुआ। यथा- उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध, आलोचना, संस्मरण, रेखाचित्र, जीवनी, आत्मकथा, रिपोर्ताज, लघुकथा, गद्यकाव्य इत्यादि। इन विधाओं के लेखकों ने हिन्दी गद्य को समुन्नत एवं समृद्ध किया है। कहना न होगा कि हर विधा का अपना एक रूपबन्ध (Structure) होता है। अतः हर विधा गद्य में कुछ नये आयामों और शब्दावलियों को लेकर आती है। इस प्रकार अनेक विधाओं में गद्य के आने के कारण गद्य का स्वरूप और भी सशक्त और प्रांजल हो जाता है। उसमें विविध विषयों को अभिव्यक्त करने की क्षमता प्रकट होती है।

हिन्दी गद्य को चरम उत्कर्ष की तरफ ले जाने वाले लेखकों में प्रेमचन्द तथा प्रेमचन्दयुग के लेखकों के प्रदान को नकारा नहीं जा सकता। प्रेमचन्द, विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', राजा राधिकारमण सिंह, भगवती प्रसाद वाजपेयी, उपेन्द्रनाथ अश्क, बृंदावनलाल वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, इलाचन्द्र जोशी, जैनेन्द्र , अज्ञेय, यशपाल,महापंडित राहुल सांकृत्यायन, भैरवप्रसाद गुप्त, रांगेय राघव आदि उपन्यासकार तथा कहानीकार हैं, जिन्होंने हिन्दी गद्य को समरसता, सरलता, संपन्नता और बहुलता से भर दिया है।

संस्कृत में एक उक्ति है- ''गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति'' अर्थात् गद्य कवियों की कसौटी है। छायावाद के जयशंकर प्रसाद,सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला,सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा जैसे कवि तथा छायावादेतर कवियों में रामधारीसिंह दिनकर,नागार्जुन, अज्ञेय आदि कवि इस कसौटी पर खरे उतरते हैं। कविता की भाँति उनका गद्य भी ऊँचाइयों को स्पर्श करता हुआ दृष्टिगत होता है।

उसके बाद निकट अतीत और वर्तमान में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी,आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, डॉ. नगेन्द्र, डॉ. नामवरसिंह, डॉ.विद्यानिवास मिश्र, डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी, डॉ. रमेशकुंतल मेघ, डॉ. शिवकुमार मिश्र, डॉ. अम्बाशंकर नागर, डॉ. मदनगोपाल गुप्त जैसे आलोचकों तथा विद्वानों ने हिन्दी गद्य को समुन्नत करने में अपना विशिष्ट योगदान दिया है। तो दूसरी तरफ रचनाधर्मी साहित्यकारों में नागार्जुन, अमृतलाल नागर, अज्ञेय, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश , निर्मल वर्मा, रमेश बख्शी, शिवानी, कृष्णा सोबती,उषा प्रियंवदा, मन्नू भण्डारी, मृदुला गर्ग, डॉ. रामदरश मिश्र, डॉ. शिवप्रसाद सिंह, फणीश्वनाथ रेणु,डॉ. राही मासूम रजा,शैलेश मटियानी, सुरेन्द्र वर्मा, मैत्रेयी पुष्पा,प्रभा खेतान, विनोद कुमार शुक्ल, डॉ. काशीनाथ सिंह प्रभृति कथाकारों ने हिन्दी गद्य को अनेक दृष्टियों से संपन्न एवं समृद्ध किया है । गद्य-शैली के प्रयोग की दृष्टि से सन् २००२ में प्रकाशित काशीनाथ सिंह का "काशी का अस्सी" उपन्यास उल्लेखनीय कहा जा सकता है । डॉ. भारत भारद्वाज के शब्दों में- "प्रयोग ही नहीं, भाषा के स्तर पर भी यह उपन्यास विनोद कुमार शुक्ल के 'दीवार में एक खिड़की रहती थी' का विलोम है ।"[८]

कुबेरनाथ राय तथा डॉ. विद्यानिवास मिश्र प्रभृति ललित निबंध लेखकों ने हिन्दी गद्य को सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य से युक्त किया, तो हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल, रवीन्द्र त्यागी, लतीफ घोंघी, शंकर पुणे तांबेकर, डॉ. बालेन्दुशेखर तिवारी, डॉ. मजीठिया, डॉ. पारुकान्त देसाई प्रभृति व्यंग्य लेखकों ने हिन्दी गद्य की व्यंग्यात्मक शक्ति को अनेक गुना बढ़ा दिया ।

कहानी : स्वरूप-विवेचन :-

कहानी को हिन्दी में कथा,गल्प, आख्यायिका आदि कहा गया है । गुजराती में इसे 'टूंकी वार्ता' (छोटी कहानी) कहा गया है ; जो अंग्रेजी के "Short-Story" का अनुवाद है । कहानी कथा-साहित्य (Fiction Lit-

erature) का प्रकार है । हमारे यहाँ प्राचीन काल से पंचतंत्र, हितोपदेश, जातककथा, पुराणकथा इत्यादि के रूप में कथा साहित्य उपलब्ध होता है, किन्तु जिसे हम आज कहानी कहते हैं, वह वस्तु, शिल्प एवं रचना-प्रक्रिया तीनों दृष्टियों से उस प्राचीन कथा से भिन्न है । आधुनिक कहानी अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव स्वरूप आयी है । उस प्राचीन कथा और आधुनिक कहानी के अंतर को यदि रेखांकित करना हो तो एक अन्य दृष्टि से भी किया जा सकता है । कहानी हम प्राथमिक कक्षाओं में भी पढ़ते हैं और हाईस्कूल तथा कॉलेजों में भी। प्राथमिक कक्षाओं में बच्चे जो कहानियाँ पढ़ते हैं वे अलग प्रकार की होती हैं और हाईस्कूल तथा कालेज में साहित्य के अन्तर्गत जिन कहानियों को पढ़ाया जाता है वे अलग प्रकार की होती हैं । प्राथमिक कक्षाओं की कहानियाँ राजा-रानी, परिलोक,भूत-प्रेत इत्यादि से संबंधित वायवी,काल्पनिक और चमत्कारपूर्ण तत्वों से परिपूर्ण होती हैं, तो दूसरी तरफ स्कूल-कालेजों के पाठ्यक्रम की कहानियाँ हमारे समसामयिक जीवन की घटनाओं और समस्याओं से संबद्ध होती हैं । पुरानी कहानियों का परिवेश प्रायः सामंत कालीन होता था,आधुनिक कहानियों का परिवेश लोकतांत्रिक या जनतांत्रिक है । पुरानी कहानी के केन्द्र में जिज्ञासा और कुतूहल था, आधुनिक कहानी के केन्द्र में मानव-चरित्र है । यदि रूपकात्मक भाषा में बात करें तो प्राचीन कहानी ''आश्चर्य चिह्नों (!!!) की कहानी थी, तो आधुनिक कहानी प्रश्नार्थ (?) की कहानी है । प्राचीन कहानियाँ कथा-सूत्रों (स्टोरी-मोटिफ्स) पर आधारित हुआ करती थी,जबकि आधुनिक कहानियाँ समसामयिक-जीवन के जन-साधारण के प्रश्नों और समस्याओं से जूझती है ।

कहानी कथा-साहित्य का एक प्रकार है । अतः कहानी के स्वरूप की चर्चा करते समय उपन्यास के स्वरूप की बात स्वयंमेव उपस्थित हो जाती है और यह स्वाभाविक ही है । आगे हम इन दोनों साहित्य प्रकारों पर कुछ विस्तार से विचार करेंगे, यहाँ केवल इतना कह देना पर्याप्त होगा कि उपन्यास में कमोवेश रूप से समग्र जीवन का अवगाहन किया जाता है, जबकि कहानी

में जीवन के किसी एक मार्मिक महत्वपूर्ण प्रसंग को उकेरा जाता है। कहानी की परिभाषा देते हुए उसके आधुनिक जनक एडगर एलन पो ने लिखा था- " A Short story is a short enough to be read in a single sitting, is written to make an impression on the reader, excluding all that does not forward that impression, complete and Final in itself "[१]

अर्थात् कहानी इतनी संक्षिप्त होती है कि उसे पाठक एक बैठक में पढ़ सकता है। वह पाठक के मस्तिष्क पर कोई एक प्रभाव डालने के हेतु से लिखी जाती है। उसमें से उन तमाम चीजों को बहिष्कृत किया जाता है जो उस प्रभाव को पैदा करने में बाधक होती है। कहानी अपने आपमें पूर्ण होती है।

उपर्युक्त परिभाषा से एक तथ्य बिलकुल खुलकर सामने आता है कि कहानी में जीवन के किसी एक प्रसंग को मार्मिकता के साथ अभिव्यंजित किया जाता है। कहानी में भी उपन्यास की भांति कथावस्तु, चरित्र-चित्रण,कथोपकथन, देशकाल या वातावरण, विचार और उद्देश्य तथा भाषा-शैली आदि छहों तत्व होते हैं तथापि दोनों की रचना प्रक्रिया में पर्याप्त अंतर दृष्टिगत किया जा सकता है।

कहानी का अन्य साहित्य स्वरूपों से संबंध :-

यह निर्दिष्ट किया गया है कि कहानी कथा-साहित्य का प्रकार है, अतः कथा-साहित्य या उससे मिलते-जुलते कुछ साहित्य प्रकारों के साथ कहानी को रखकर उसे देखने-परखने का हमारा उपक्रम है।

(१) कहानी और उपन्यास :-

कहानी और उपन्यास उभय कथा-साहित्य के प्रकार हैं। जैसा कि ऊपर कहा गया है, इन दोनों साहित्य-स्वरूपों के तत्व समान हैं। दोनों का संबंध मानव-जीवन,मानव-चरित्र और मानव-चेतना से है। तथापि इन दोनों

में काफी अंतर परिलक्षित किया जा सकता है । यहाँ बहुत संक्षेप में इन दोनों के तात्विक अंतर को रेखांकित करने का प्रयत्न किया गया है ।

१. उपन्यास और कहानी का प्रथम अंतर तो आकारगत है । उपन्यास बड़ा होता है, कहानी छोटी होती है । उपन्यास का लघुत्तम आकार साठ-सत्तर पृष्ठों का होता है ।[१०] और गुरूत्तम आकार हजारों पृष्ठों का हो सकता है । [११] दूसरी ओर कहानी दो-तीन पृष्ठों से लेकर [१२] साठ-सत्तर पृष्ठों की हो सकती है । [१३] तो इनके बीच की व्यावर्तक रेखा क्या होगी ? छोटे-से छोटा उपन्यास साठ-सत्तर पृष्ठों का और बड़ी से बड़ी कहानी साठ-सत्तर पृष्ठों की होगी तो यह तय कर पाना मुश्किल होगा कि इसे उपन्यास कहा जाए या कहानी ? इसका उत्तर यह है कि उपन्यास की कथावस्तु जीवन को समग्रता के साथ प्रस्तुत करती है, उसमें जीवन के कई प्रसंगों का ब्यौरा मिलता है। उपन्यास का पट एक दिन का हो [१४] तो भी स्मृतियों और पूर्वदीप्ति द्वारा विगत जीवन के कई महीनों या वर्षों की कथा को समेट लिया जाता है । दूसरी ओर कहानी में जीवन के किसी एक मार्मिक प्रसंग को या अधिक से अधिक दो-तीन प्रसंगों को लिया जा सकता है । अतः इस आधार पर हम इन दो साहित्य-स्वरूपों को एक-दूसरे से अलगा सकते हैं, किन्तु आकार की दृष्टि से उपन्यास को बड़ी कहानी ओर कहानी को छोटा उपन्यास कहना भ्रान्तिपूर्ण होगा । चौपाया होने के आधार पर हम बैल को बड़ा मेंढक और मेंढक को छोटा बैल नहीं कह सकते ।[१५]

२. कथावस्तु की भांति पात्र-संख्या की दृष्टि से भी दोनों साहित्य-रूपों की तुलना की जा सकती है । उपन्यास में तीन-चार पात्रों से लेकर हजारों पात्र रह सकते हैं । दूसरी ओर कहानी में दो-तीन पात्रों से लेकर आठ-दस पात्र रह सकते हैं । यहाँ भी वही समस्या आयेगी । उसका निदान यह है कि तीन-चार पात्रों के बावजूद यदि उपन्यास में जीवन के अनेकानेक प्रसंगों का विवरण मिलता है तो वह उपन्यास है और आठ-दस पात्रों के बावजूद यदि उसमें दो-तीन प्रसंगों की बात आती है तो वह कहानी है ।

३. उपन्यास और कहानी के चरित्रांकन की प्रक्रिया में भी अंतर दृष्टिगोचर होता है। उपन्यास में यदि किसी पात्र का हृदय-परिवर्तन बताया जाता है तो उसके लिए लेखक अनेक प्रसंगों की पृष्ठभूमि का निर्माण करता है, दूसरी ओर यदि कहानी में इसे दिखाना हो तो किसी एक मार्मिक घटना के द्वारा उसे सिद्ध किया जाता है। कहावत की भाषा में कहना चाहें तो कह सकते हैं कि ''कहानीकार सुनार की सौ में नहीं, बल्कि लुहार की एक में'' मानता है।

४. उपन्यास और कहानी दोनों में छः तत्व होते हैं - कथावस्तु, पात्र, कथोपकथन, वातावरण, विचार और उद्देश्य और भाषा-शैली। किन्तु उपन्यस में इन सभी तत्वों का समावेश बराबर-बराबर ढंग से होता है; वहाँ कहानी में इनमें से किसी एक तत्व को प्रधानता देते हुए अन्य तत्वों का आंशिक प्रयोग भी हो सकता है। कहानी कभी-कभी कथावस्तु प्रधान,चिरित्र-चित्रण प्रधान, वातावरण प्रधान, संवाद प्रधान या उद्देश्य प्रधान। कभी-कभी तो कोई खास कथावस्तु न होते हुए भी कहानी में एक विशेष भावस्थिति का चित्रण मात्र रहता है।

५. उपन्यास और कहानी दोनों में वर्णन और लेखकीय विवरण होते हैं,किन्तु कहानी में ये संक्षिप्त होते हैं। उपन्यास में कई बार ऐसा भी हो सकता है कि लेखक कोई प्रसंग-विशेष का चित्रण अनेक पृष्ठों तक करता चला जाए। कहानी में यह संभव नहीं है। कहानी में उसके लिए गुंजाइश भी नहीं है।

इस प्रकार उपन्यास और कहानी उभय कथा-साहित्य के ही प्रकार होते हुए भी उनमें वस्तु और शिल्प की दृष्टि से काफी अंतर दृष्टिगत किया जा सकता है।

२. कहानी और नाटक :-

इन दोनों साहित्य-प्रकारों में कथा और पात्रों के तत्व तो रहते हैं।

वातावरण,उद्देश्य और भाषा-शैली का भी समावेश इन दोनों में पाया जाता है । कहानी में संवाद या कथोपकथन का तत्व भी है और कई बार उसका सर्वथा लोप भी हो सकता है । दूसरे वस्तुगत, पात्रगत और वर्णनगत जो अंतर उपन्यास और कहानी में है, उस अंतर को कहानी और नाटक में भी विश्लेषित किया जा सकता है । इस दृष्टि से यदि इन काव्यरूपों पर विचार किया जाए तो कहानी नाटक के लघुरूप एकांकी के अधिक समीप ठहरती है । कहानी और एकांकी में आकारगत समानता दृष्टिगोचर होती है । किन्तु दोनों की रचना-प्रक्रिया में अन्तर है । कहानी जहाँ वर्णनप्रधान होती है, वहाँ एकांकी संवादों के माध्यम से ही आगे बढ़ती है । एकांकीकार बीच-बीच में कुछ रंगमंचीय निर्देश अवश्य देता है, किन्तु एकांकी का प्रधान तत्व तो संवाद या कथोपकथन ही है । कहानी में नाटकीयता का समावेश किया जा सकता है और ऐसी कहानियाँ संवादप्रधान भी हो सकती हैं; किन्तु लाख संवाद प्रधान होते हुए भी कहानी में लेखकीय वर्णनों और विवरणों को अवकाश रहता है । एकांकी में जो एकान्विति पायी जाती है- एक भाव, एक विचार, एक लक्ष्य,एक चमत्कृति- वह कहानी में भी संभव है । तथापि वस्तु और शिल्प-संरचना की दृष्टि से ये दोनों विधाएँ भिन्न प्रकार की हैं । एक पाठ्य है, दूसरी दृश्य ।

३. कहानी और रेखाचित्र :-

यद्यपि ये दोनों साहित्य-प्रकार भी किसी न किसी तरह कथातत्व से जुड़े हुए हैं, तथापि वस्तु और शिल्प की दृष्टि से इनमें भी पर्याप्त अंतर पाया जाता है । रेखाचित्र के केन्द्र में कोई व्यक्ति या प्राणी होता है । कहानी के केन्द्र में व्यक्ति या प्राणी न रहकर कोई और तत्व भी रह सकता है, उदाहरणतया- उद्देश्य, वातावरण या कोई भावस्थिति मात्र । यद्यपि कभी-कभी मानवेतर सृष्टि पर भी कहानियाँ मिलती हैं, किन्तु अति स्वल्प मात्रा में । पुरानी पंचतंत्र, हितोपदेश या जातक कथाओं की कथाओं में मानवेतर सृष्टि

का प्राधान्य था, किन्तु आधुनिक कहानी में मानवेतर सृष्टि केन्द्र में नहीं है। केन्द्र में है मानव और मानव की समस्याएँ। मानवेतर सृष्टि का प्रयोग कहानी में केवल वातावरण की जमावट के लिए किया जाता है। कहीं-कहीं उससे गहरा लगाव भी दृष्टिगत होता है, जैसे प्रेमचंद कृत ''पूस की रात'' कहानी में हलकू और जबरा कुत्ते का संबंध या शैलेष मटियानी कृत ''मैमूद'' में मैमूद नामक बकरे से आत्मीयता का संबंध। किन्तु जैसाकि पहले निर्दिष्ट किया गया है , ऐसी कहानियाँ बहुत कम स्वल्प मात्रा में उपलब्ध होती है। दूसरी ओर रेखाचित्र में मानवेतर सृष्टि भी पायी जाती है। महादेवी वर्मा के कई रेखाचित्र पशु-पक्षियों पर आधारित है। दूसरा महत्वपूर्ण अंतर कहानी और रेखाचित्र में यह है कि कहानी यथार्थ होते हुए भी काल्पनिक होती है, जबकि रेखाचित्र वास्तविक पात्र या घटना पर आधारित होता है। कहानी अधिकांशतः साधारण मनुष्यों पर आधारित होती है। हमारे आसपास का जन-साधारण ही प्रायः उसमें उभरकर आता है। रेखाचित्र किसी साधारण,सामान्य व्यक्ति पर भी आधारित हो सकता है, दूसरी ओर वह कई बार महापुरुषों के जीवन पर आधारित होते हैं। डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया द्वारा संपादित ''उभरी गहरी रेखाएँ'' में जो रेखाचित्र संकलित हैं, वे प्रेमचन्द, टैगोर, प्रसाद, माखनलाल चतुर्वेदी आदि कवियों और लेखकों पर आधारित हैं। कवियों और लेखकों के जीवन पर आधारित कहानियाँ बहुत कम होती हैं,या होती ही नहीं हैं। संक्षेप में रेखाचित्र वास्तविकता और तथ्य पर आधारित होती है, दूसरी ओर कहानी का यथार्थ रचा हुआ,गढ़ा हुआ और काल्पनिक होता है।

४. कहानी और रिपोर्ताज :-

कहानी और रिपोर्ताज में भी वही अंतर है जो कहानी और रेखाचित्र में होता है। रिपोर्ताज वास्तविक घटना पर आधारित होता है, जबकि कहानी में सामाजिक यथार्थ का पुट रहते हुए भी वह पूर्णतया कल्पना पर आधारित

होती है । उसकी रचना काल्पनिक है । रेखाचित्र और रिपोर्ताज दोनों वास्तविकता की कलाएँ हैं, किन्तु उभय की कालगत विभावना में अंतर है । रेखाचित्र अतीत या निकट अतीत के वास्तविक अनुभवों पर आधारित होता है,जबकि रिपोर्ताज का संबंध विशुद्धतया वर्तमान से होता है। रिपोर्ताज में किसी घटना का आँखों देखा ताजातरीन अहवाल प्रस्तुत किया जाता है । उसमें समाचार या खबरें देने की प्रबल प्रवृत्ति रहती है । कहानी किसी एक मार्मिक घटना को केन्द्र में रखकर लिखी जाती है, जबकि रिपोर्ताज में किसी एक घटना के विविध आयामों और पहलुओं को प्रस्तुत करने का उपक्रम रहता है । रिपोर्ताज में विवरणों और वर्णनों के ब्यौरे अधिक रहते हैं । रूपात्मक भाषा में विचार करें तो कहानी जहाँ तुलिका की कला है, रिपोर्ताज कैमेरा की कला है ।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि ऊपर निर्दिष्ट काव्यरूप कहानी से कुछ-कुछ समानता रखते हुए भी उनमें वस्तु ओर शिल्प की दृष्टि से अन्तर दृष्टिगत होता है,किन्तु यह भी उतना ही सच है कि उपर्युक्त विधाओं का कहानी पर किसी न किसी रूप में प्रभाव अवश्य पड़ता है और उन विधाओं के कतिपय तत्वों का विनियोजन कहानी में यथावश्यक किया जाता रहा है ।

कहानी की विकास-यात्रा :-

यद्यपि हमारे यहाँ कहानी प्राचीन काल से पंचतंत्र, हितोपदेश, कथासरितसागर, जातक कथाएँ, बत्तीस पुतलियों की वार्ता, राजा भोज की कहानियाँ,विक्रम वैताल की कहानियाँ, अकबर-वीरबल की कहानियाँ आदि के रूप में मिलती रही हैं; तथापि जैसा कि पहले निर्दिष्ट किया गया है, आधुनिक कहानी अपने वस्तु और शिल्प में उस प्राचीन कहानी से अलग पड़ती है । आधुनिक कहानी अंग्रेजी की ''Short Story'' से अधिक प्रभावित है । अतः कहानी का विकास भी उपन्यास की भाँति आधुनिक काल में गद्य के विकास के साथ हुआ ।।

आधुनिक काल में कहानियों का उद्‌भव ''सरस्वती'' पत्रिका के प्रकाशन के साथ सन्‌ १९०० से होता है। अतः कहानी का प्रारंभ हम द्विवेदी युग से मान सकते हैं। भारतेन्दु युग में कहानियाँ नहीं लिखी गयी थीं। कुछ कथात्मक शैली के निबंध अवश्य लिखे गए थे, जो पढ़ने में बहुत रोचक थे।[१६] भारतेन्दु युग में कहानियों के नाम पर जो संग्रह प्राप्त होते हैं, वे इस प्रकार हैं- मुंशी नवल किशोर द्वारा संपादित ''मनोहर कहानी (१८८०); अम्बिकादत्त व्यास कृत 'कथाकुसुम कलिका' (१८८८); राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द कृत ''वामा मनोरंजन''(१८८६), चण्डी प्रसाद सिंह कृत 'हास्य रतन'(१८८६) आदि-आदि। ये लोकप्रचलित तथा इतिहास पुराण कथित शिक्षा, नीति या हास्य प्रधान कहानियाँ हैं जिनको इन लेखकों ने स्वयं लिखकर या लिखवाकर संपादित किया है। कहानी के नाम पर जो स्वप्न कथाएँ लिखी गयी हैं- वे वस्तुतः कथात्मक निबंध हैं। इनका आरंभ कथात्मक पद्धति पर अवश्य हुआ है, किन्तु आगे चलकर अवसर मिलते ही उनमें तत्कालीन समाज की विकृतियों और विद्रूपताओं का चित्रण आरंभ हो जाता है। भारतेन्दु हरिशचन्द्र और बालकृष्ण भट्ट की स्वप्न-कथाएँ कहानी और निबंध के बीच की रचनाएँ प्रतीत होती हैं।[१७] वस्तुतः देखा जाए तो ये कहानियाँ प्राचीन 'वैताल-पचीसी' या 'सिंहासन बत्तीसी' के अधिक निकट लगती हैं। वस्तुतः जिसे आज कहानी कहा जाता है उसका प्रारंभ तो जैसा कि ऊपर कहा गया है, द्विवेदी युग से ही होता है।

हिन्दी में आधुनिक कहानियों का प्रारंभ सन्‌ १९०० से माना जाता है। हिन्दी कहानी के प्रारंभ के कहानीकारों में किशोरीलाल गोस्वामी, गिरजाकुमार घोष, बंग महिला, पंडित रामचंद्र शुक्ल, मास्टर भगवानदास आदि के नाम उल्लेखनीय कहे जा सकते हैं। इन लेखकों के द्वारा प्रणीत कहानियों में कुछ तो मौलिक है, कुछ बंगला तथा अंग्रेजी से अनूदित तथा कुछ पर बंगला या अंग्रेजी साहित्य की कथा-कृतियों की छाया पायी जाती है। इन प्रारंभिक कहानियों में किशोरीलाल गोस्वामी तथा बंग महिला द्वारा लिखित क्रमशः

"इन्दुमती" तथा "दुलाई वाली" जैसी कहानियाँ विशेष चर्चित रहीं। "इन्दुमती" कहानी शेक्सपियर के "टेम्पेस्ट"(Tempest) नाटक पर आधृत है। सन् १९०२ में सरस्वती में लाला भगवानदीन की "प्लेग की चुड़ैल" कहानी प्रकाशित हुई थी, जो वास्तविक घटना पर आधारित थी। सरस्वती पत्रिका में ही आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की "ग्यारह वर्ष का समय" नामक कहानी प्रकाशित हुईथी। बाबू गुलाबराय कहानियों के इस प्रारंभिक विकास को मोड़ देने वाले जयशंकर प्रसाद के संदर्भ में लिखते हैं-

"वास्तव में स्वनामधन्य जयशंकर प्रसाद जी ने इस क्षेत्र में अवतरित होकर छोटी कहानियों में एक प्रकार की प्राण-प्रतिष्ठा कर दी। उनकी "ग्राम" नामक पहली कहानी उनके द्वारा स्थापित "इन्दु" नाम की पत्रिका में संवत् १९६७ में निकली। उनकी "आकाशदीप", "पुरस्कार", "प्रतिध्वनि", "चित्रमंदिर" आदि कहानियों ने एक नया युग उपस्थित किया। उनकी कहानियों में स्वर्णिम आभा से विभूषित प्राचीनता के वातावरण को उपस्थित करने के अतिरिक्त अच्छे मनोवैज्ञानिक चित्र आये हैं। उनमें हमको बड़े सुंदर अंतर्द्वन्द भी दिखाई पड़ते हैं। "पुरस्कार" नाम की कहानी में राजभक्ति और वैयक्तिक प्रेम का संघर्ष है। आत्मबलिदान द्वारा मधुलिका इस द्वन्द का शमन कर देती है।"[१८]

जयशंकर के पश्चात विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', वृन्दावनलाल वर्मा, राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, सुदर्शनजी आदि कहानीकार आते हैं। कौशिकजी की कहानियाँ अधिकांशतः सामाजिक कहानियों की कोटि में आती हैं। इनकी कहानियों में प्रायः नगरीय जीवन के अच्छे चित्र उपलब्ध होत हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में कथोपकथन का भी सुंदर प्रयोग किया है। "रक्षाबंधन" उनकी प्रसिद्ध कहानियों में है। सन् १९०९ में वृन्दावनलाल वर्मा ने "राखीबंध भाई" नामक कहानी लिखकर एक प्रकार से ऐतिहासिक कहानियों का सूत्रपात कर दिया। राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह की कहानियाँ अधिक भावपूर्ण होती थीं। उनकी कहानियों में "कानों में कंगना" कहानी

विशेष चर्चित रही थी, जिसका प्रकाशन ''इन्दु'' में सन् १९१३ में हुआ था।[१९]

सुदर्शनजी भी इस समय के एक प्रतिष्ठित कहानीकारों में हैं। उन्होंने तत्कालीन राजनीतिक आंदोलनों से प्रेरित होकर कई कहानियाँ लिखी हैं। उनकी ''न्यायमंत्री'' नामक कहानी ऐतिहासिक वृतान्त पर आधारित हैं। उनकी ''हार की जीत'' नामक कहानी बहुत लोकप्रिय हुईथी। यह कहानी हिन्दी के प्रायः कहानी संकलनों में पाई जाती है। इस कहानी में उच्च मानवीय मूल्यों को केन्द्रस्थ किया गया है। उनकी कहानियों में शहरी -मध्यवर्ग-प्रतिनिधिरूप में आया है।

''वास्तव में सुदर्शन जी, कौशिक जी और प्रेमचन्द जी के साथ हिन्दी कहानी लेखकों में बृहतत्रयी में रखे जा सकते हैं।''[२०]

इस समय पंडित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी जी की एक कहानी ''उसने कहा था'' सन् १९१५ में सरस्वती में प्रकाशित होती है। हिन्दी के कहानी-साहित्य के इतिहास में इस कहानी को एक शकवर्ती कहानी माना जा सकता है। हिन्दी के अधिकांश कहानी-संकलनों में यह कहानी उपलब्ध होती है। गुलेरी जी ने केवल तीन-चार कहानियाँ लिखी हैं, किन्तु अपनी इस कहानी के आधार पर उनकी गणना हिन्दी के प्रमुख कहानीकारों में होती रही है। प्रथम महायुद्ध (१९१४-१९१९) की पृष्ठभूमि में लिखी गयी यह कहानी अपने रचना-सौष्ठव, शिल्प एवं यथार्थ-परिवेश निर्माण की दृष्टि से अपने समय से बहुत आगे की रचना प्रतीत होती है।

इस समय के आसपास हिन्दी कहानी जगत में मुंशी प्रेमचन्द का आविर्भाव होता है,जो हिन्दी कहानी में एक जान डाल देते हैं। प्रेमचंद की कतिपय कहानियाँ पहले उर्दू के पत्र ''जमाना'' में प्रकाशित हो चुकी थीं,किन्तु उनके उर्दू कहानी संग्रह ''सोज़ेवतन'' की कहानियों को अंग्रेज सरकार जप्त कर लेती है। पहले प्रेमचन्द जी नवाबराय नाम से लिखते थे। जब हिन्दी में आए तो उन्होंने प्रेमचन्द नाम धारण करके लिखना शुरू किया। उस समय

सरस्वती पत्रिका में प्रेमचन्द की ''सौत'', ''पंचपरमेश्वर'',''सज्जनता का दण्ड'',''ईश्वरीय न्याय'' और ''दुर्गा का मंदिर'' जैसी कहानियाँ प्रकाशित और प्रसिद्ध होती हैं। ये कहानियाँ सन् १९१५ से १९१७ के दौर में लिखी गयी हैं।[२१]

मुंशी प्रेमचंदजी की कहानियों के संदर्भ में बाबू गुलाबराय लिखते हैं - ''मुंशी प्रेमचंदजी ने हिन्दी कहानियों में जान डाल दी हैं। उन्होंने सरल मुहावरेदार भाषा में बड़े सुंदर मनोवैज्ञानिक चित्र दिए हैं। ग्राम्य-जीवन के दृश्य उपस्थित करने में वे सिद्धहस्त थे। उन्होंने अपनी कहानियों द्वारा साधारण मनुष्यों में भी उच्च मानवता के दर्शन कराये हैं। ''पंचपरमेश्वर'' में पद का उत्तरदायित्व दिखलाया है। ''बड़े घर की बेटी'' बुरे अर्थ में भी बड़े घर की बेटी है और भले अर्थ में भी अपने नाम को सार्थक करती है,जो देवर और पति के बीच में लड़ाई का कारण बनती है,वही उनमें मेल कराकर अपने हृदय की मानवता का परिचय देती है। ''शतरंज के खिलाड़ी'' आदि कहानियाँ जीवन के अच्छे चित्र हैं। ''ईदगाह'' में गरीब मुस्लिम जीवन की झांकी मिलती है। मुंशीजी की कहानियाँ अधिकांश में घटना-प्रधान हैं, किन्तु उनमें भावुकता का भी पुट पर्याप्त मात्रा में मिलता है। मुंशी जी की कहानियों में वर्णन का यथार्थवाद है, किन्तु उद्देश्य आदर्शवादी है। वे आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी थे। मुंशी प्रेमचंदजी आधुनिक कहानी के बाहरी दृश्यों में मनुष्य के अंतरजीवन की झलक दिखाने की प्रवृत्ति पूर्णरूपेण परिलक्षित होती है।''[२२]

इस प्रकार हिन्दी कहानी का प्रारंभ तो हो जाता है, किन्तु उसका वास्तविक विकास प्रेमचंदयुग (१९१८-१९३६) में होता है। कविता के क्षेत्र में इसे ही छायावाद कहा गया है। डॉ. नगेन्द्र प्रेमचंद के कहानी-प्रदान को लेकर लिखते हैं-

''जिस प्रकार प्रेमचंद इस काल के उपन्यास-साहित्य के एकछत्र सम्राट बने रहे,उसी प्रकार कहानी क्षेत्र में भी उनका स्थान अद्वितीय रहा। इस अवधि

में उन्होंने दो सौ कहानियाँ लिखीं । उनके कहानी-लेखन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि स्वयं उनकी कहानियों में हिन्दी कहानी के विकास की प्रायः सभी अवस्थाएँ दृष्टिगोचर हो जाती हैं । उनकी आरंभिक कहानियों में किस्सागो, आदर्शवाद और सोद्देश्यता की मात्रा अधिक है । यद्यपि व्यावहारिक मनोविज्ञान का पुट देकर मानव-चरित्र के सूक्ष्म उद्घाटन की क्षमता के फलस्वरूप प्रेमचंद ने अपनी कहानियों को विशिष्ट बना दिया है । पर उनकी आरंभिक कहानियों का कच्चापन और यथार्थ की उनकी कमजोर पकड़ अत्यन्त स्पष्ट है । इन कहानियों में हम एक अत्यन्त प्रबुद्ध कलाकर को कहानी के सही ढांचे या शिल्प की तलाश में संघर्षरत पाते हैं ।''[२३]

प्रेमचंद की प्रमुख और चर्चित कहानियों में हम निम्नलिखित कहानियों का उल्लेख कर सकते हैं-

बलिदान, आत्माराम, बूढ़ी काकी, विचित्र होली, गृहदाह, हार की जीत, परीक्षा, आपबीती, उद्धार, सवासेर गेहूँ, शतरंज के खिलाड़ी, माता का हृदय, कजाकी, सुजान भगत, इस्तिफा, पूस की रात, तावान, होली का उपहार, ठाकुर का कुआँ, बेटों वाली विधवा, ईदगाह, नशा, बड़े भाई साहब और कफ़न । ये कहानियाँ सन् १९१८ से १९३६ के दरमियान लिखी गई हैं । सन् १९३६ में ही प्रेमचंदजी का निधन हुआ । वस्तुतः देखा जाए तो प्रेमचंद एक बने हुए लेखक नहीं हैं वे निरंतर एक बनते हुए लेखक (Becomming) की स्थिति में रहे हैं । उनकी यह लेखन-यात्रा आदर्श से यथार्थऔर स्थूल से सूक्ष्म की ओर रही है । उनकी कहानियों में निरंतर मंजावट आती गयी है । इस संदर्भ में मेरे निर्देशक डॉ. पारुकान्त देसाई जी ने लिखा है-

''प्रेमचंद जी सामाजिक मूल्यों के प्रति प्रतिबद्ध लेखक हैं । उनकी कहानियों का उद्देश्य सामाजिक क्रान्ति है । अतः उनकी कहानियाँ रोमांचक, साहसिक, स्थूल घटना प्रधान और कौतूहल वर्धक न होकर समाज के प्राणप्रश्नों को मानवीय संवेदना के साथ उकेरने वाली होती हैं। मानवीय संवेदना प्रेमचंदजी की कहानियों का प्राणतत्व है । प्रेमचंदजी ने जो तीन सौ

के लगभग कहानियाँ लिखी हैं, उनमें हमें वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र मिलते हैं, क्योंकि प्रेमचंद के ही शब्दों में वे अपने कथा-साहित्य के पात्र पुस्तकों से न लेकर दृश्यमान जगत से लेते हैं। समाज के प्रति कटु यथार्थ को निरूपित करनेवाली उनकी जो कहानियाँ हैं उनमें मानव चरित्र का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक निरीक्षण मिलता है। प्रेमचंद का युग नवजागरण, समाजसुधार, राष्ट्रीय चेतना और रूढ़ि-विरोध का युग था। अतः उनकी कहानियों के विषय भी उसी के अनुरूप होते हैं। अनमेल विवाह, दहेज प्रथा, वेश्यावृत्ति, नारी की आर्थिक पराधीनता, नारी का समाज में नैतिक शोषण, नारी शिक्षा, अंधविश्वास, सांप्रदायिकता, राष्ट्रीयता आदि अनेक विषयों पर प्रेमचंद जी ने अपनी कलम चलाई है। कलाकार की निजी पूंजी उनका दर्द होता है और प्रेमचंदजी ने अपनी सभी कहानियों में मानवीय दर्द को उभारने का प्रयत्न किया है। कला की दृष्टि से प्रेमचन्दजी की कहानियाँ मोपासां के करीब पड़ती हैं। प्रेमचंदजी की कहानियों में जागरूकता और कलागत ताटस्थ्य मिलता है। सवासेर गेहूँ, शंखनाद, मंत्र, ईदगाह, कफ़न, शतरंज के खिलाड़ी, नशा, पंचपरमेश्वर, दो बैलों की कथा, पूस की रात, बड़े घर की बेटी आदि प्रेमचंद जी की बहुचर्चित एवं श्रेष्ठ कहानियाँ हैं। प्रेमचंदजी अपने आरंभिक काल में आदर्शवाद के अधिक निकट थे, परंतु धीरे-धीरे वे यथार्थवाद के निकट पहुँचते गये हैं। "नमक का दारोगा" कहानी का अन्त प्रेमचंद की आदर्शवादी प्रवृत्ति का द्योतक है, परन्तु प्रेमचंद जी बाद की कहानियों में कटूयथार्थ के उद्घाटक ही रहे हैं। प्रेमचंद जी की कहानी कला का उत्कृष्ट उदाहरण हमें "कफ़न" जैसी कहानियों में मिलता है।"[२४]

चण्डी प्रसाद हृदयेश की कहानियाँ गद्य काव्य के अधिक निकट पड़ती हैं। उनकी भाषा-शैली पर प्रसाद जी का प्रभाव परिलक्षित किया जा सकता है। प्रेमचंदजी के बाद कहानी साहित्य के मनोवैज्ञानिक आयाम देने का कार्य जैनेन्द्र जी ने किया। जैनेन्द्र की कहानियों में हम नये युग की वैयक्तिक

भावनाओं को देख सकते हैं। उनकी ''खेल'' नामक कहानीको पढ़कर हमारे राष्ट्रीय कवि मैथिलीशरण गुप्त ने कहा था कि हिन्दी में रविबाबू और शरद बाबू दोनों एक साथ जैनेन्द्रजी के रूप में मिल गये।[२५]

जैनेन्द्र जी की कहानियों में पात्रों का मनोविश्लेषणात्मक चित्रण मिलता है। कहानी के बीच-बीच में कई बार वे बड़ी तथ्यपूर्ण बात कह देते हैं। उपन्यासों की भाँति उनकी कहानियों में भी हमें दार्शनिकता दृष्टिगत होती है। उनके कथा-साहित्य के पात्र प्रायः कुछ असाधारण-से होते हैं। जैनेन्द्र यथार्थ के नहीं, संभावनाओं के कलाकार हैं। जैनेन्द्रजी की कहानी-कला पर अपने विचार व्यक्त करते हुए डॉ. निर्मला जैन लिखती हैं-

''कहानी में वास्तविकता का प्रश्न जैनेन्द्र के लिए शायद कुछ महत्वपूर्ण नहीं रहा, क्योंकि वे कहानी को ठेठ कल्पना की सृष्टि मानते हैं। उनके लिए मूल वस्तु विचार है। कहानी तब बनती है, जब घटना घटती नहीं, बल्कि किसी घटना में मोड़ आता है। बस इसी मोड़ पर नजर टिकाकर जैनेन्द्र उसका मनोवैज्ञानिक कारण ढूँढ़ते हैं...बल घटना पर न रहकर, बड़ी से बड़ी घटना में निहायत निजी तत्व के ढूँढ़ने पर रहता है। जैनेन्द्र जी की दृष्टि में जो निदान समस्या के बाहर देखता है, देश और काल में देखता है, वह रोग के लक्षणों को तो पकड़ता है, मूल तक नहीं जा पाता।''[२६] उनकी कहानियों में खेल, रुकिया बुढ़िया, फोटोग्राफी, अपना अपना भाग्य, पत्नी, पाजेब, जाह्नवी, दो सहेलियाँ आदि प्रमुख है।

जैनेन्द्र के पश्चात् मनोवैज्ञानिक कहानियों के क्षेत्र में अज्ञेय जी का नाम लिया जा सकता है। अज्ञेयजी की कहानियों में कलागत या शिल्पगत निपुणता रेखांकित की जा सकती है। भाषा पर उनका प्रभुत्व श्लाघनीय है। कहीं-कहीं उनकी कहानियों में विप्लव और विस्फोट की भावनाएँ निहित रहती हैं। ''अमर वल्लरी'' नामक कहानी में उन्होंने पीपल के वृक्ष के जीवनवृत्त को काव्यात्मकता प्रदान की है। अज्ञेयजी की कहानियों में वातावरण और पात्रगत प्रतिक्रिया को एक लेखकीय निजी या विशिष्ट दृष्टि से देखने-

परखने का उपक्रम मिलता है । लेखक के अपने चिंतन और मनोदशा में रंगे- हुए चित्र उनकी कहानियों में अधिक मिलते हैं । रोज़, हिलीबोन की बतखें, मेजर चौधरी की वापसी, पठार का धीरज,पगोड़ा वृक्ष, विपथगा, जयदोल, शरणदाता, कलाकार की मुक्ति, सभ्यता का एक दिन, नारंगियाँ आदि उनकी बहुचर्चित कहानियाँ है । अज्ञेय ने एक आत्मनिष्ठ, चिंतनमग्न यायावर नायक हिन्दी को दिया है । अज्ञेय की कहानी के वस्तु-चयन में हमें विस्तृत फलक मिलता है ।[२७]

जैनेन्द्र और अज्ञेय के उपरांत प्रेमचंदोत्तर काल में चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, कमलाकान्त वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, सियाराम शरण गुप्त, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', उपेन्द्रनाथ अश्क, यशपाल आदि लेखकों की कहानियाँ मिलती हैं । इस समय कुछ लेखिकाएँ भी इस क्षेत्र में पदार्पण करती हैं । इन लेखिकाओं में शिवरानी देवी (प्रेमचंद की धर्मपत्नी), सुभद्राकुमारी चौहान,कमलादेवी चौहान, उषादेवी मित्रा, चन्द्रकिरण सोनरिक्शा, होमवती देवी तथा चन्द्रवती जैन आदि प्रमुख हैं ।

जैनेन्द्र और अज्ञेय के पश्चात् मनोवैज्ञानिक कहानियों के क्षेत्र में इलाचन्द्र जोशी आते हैं । फ्रायड तथा एडलर के मनोविश्लेषण संबंधी सिद्धान्तों को उनकी कहानियों में रेखांकित किया जा सकता है । मनोविश्लेषण की प्रक्रिया से गुजरते हुए वे चेतन, अवचेतन, उपचेतन के विभिन्न स्तरों का उद्घाटन अपनी कहानियों में करते हैं । इलाचन्द्र जोशी की कहानियों को एक प्रकार से मनोवैज्ञानिक "केस हिस्टरी" की कहानियाँ कह सकते हैं । जोशी जी में जीवनानुभव कम शास्त्रीय ज्ञान अधिक है । अतः उनकी कहानियों में प्रायः किताबी सूरतें, किताबी स्थितियाँ और ग्रंथियाँ परिलक्षित होती हैं । फलतः उनकी कहानियाँ प्रायः निरस, असंवेदनीय और अपठनीय हो गई हैं । "खंडहर की आत्माएँ", "डायरी के नीरस पृष्ठ", "आहुति" और "दिवाली" आदि उनके प्रमुख कहानी संग्रह हैं । जहाँ जोशी जी की कहानियाँ मनोवैज्ञानिक शास्त्रीयता पर आधारित और फार्मूलाबद्ध है, वहाँ उपेन्द्रनाथ

अश्क की कहानियों में हमें जीवन की विविधता के दर्शन होते हैं। अश्क में पायी जानेवाली विविधता विषयवस्तु और शिल्प दोनों धरातलों पर विद्यमान हैं। किन्तु अश्क ने जहाँ कहानियों को सेक्स, प्रतीक, मनोविश्लेषण आदि के आधार पर गढ़ा गया है वहाँ उनकी कहानियाँ भी जोशी जी की तरह फार्मूलाबद्ध हो गयी हैं। ''डाची'' और ''कांगड़ा का तेली'' आदि उनकी चर्चित कहानियाँ हैं। ''लैरिन्जाइटस'' उनकी एक व्यंग्यात्मक कहानी है। यदि प्रेमचन्द जैनेन्द्र और अज्ञेय की भाँति उन्होंने अपनी कहानीलेखन की धारा को बनाने की चेष्टा की होती तो वे एक अधिक सफल कहानीकार हो सकते थे, क्योंकि उनकी कहानियों में क्रियात्मक सामाजिक दृष्टि के कारण एक प्रकार की कलात्मक परिपक्वता के दर्शन होते हैं।

यशपाल जी ने मार्क्सवादी-प्रगतिवादी दृष्टि को ध्यान में रखते हुए सशक्त कहानियाँ लिखी हैं। वर्तमान समाज व्यवस्था के विकल्प के रूप में यशपाल जी मार्क्सवादी विकल्प प्रस्तुत करते हैं। वे वर्तमान सामाजिक व्यवस्था, परंपरागत जाति व्यवस्था, पैसा, पद और आडम्बरों से ग्रस्त मध्यवर्ग चेतना आदि सभी की कुशलतापूर्वक शल्य-क्रिया करते हैं। प्रेमचन्द और जैनेन्द्र के बाद कहानी के क्षेत्र में यशपाल जी एक नयी दिशा का निर्देश करते हैं। मार्क्सवादी कथाकार होने के कारण उनकी कहानियों में शोषित मनुष्यता के प्रति आत्मीयता का भाव दृष्टिगोचर होता है। कथ्य एवं शिल्प दोनोंप्रकार की सुदृढ़ता उनकी कहानियों में मिलती है क्योंकि सोद्देश्यता उनकी कहानियों का गुण है।

यशपाल जी की धर्मपत्नी प्रकाशवतीजी ने एक साक्षात्कार में कहा था-''मैं समझती हूँ कि यशपाल जी सबसे अधिक जो उभरे हैं,अपनी छोटी कहानियों में।''[२८] वस्तुतः देखा जाय तो यशपाल जी के साहित्य का प्रारंभ भी कहानी साहित्य से ही हुआ है। उनकी कहानियाँ मार्मिक, सचोट एवं प्रभावशाली है। अपनी कहानियों में यशपाल जी जो व्यंग्य प्रकट करते हैं वे पाठक के मनोमस्तिष्क पर गहरा प्रभाव डालते हैं। यशपाल जी के एक

अध्येता डॉ. प्रकाशचन्द्र मिश्र इस संदर्भ में टिप्पणी देते हैं-" मानव जीवन को इतनी समग्रता से देखने-परखने और विश्लेषित करनेवाले कहानीकार प्रेमचन्द के पश्चात् यशपाल ही हैं । एक गहरी अन्तर्दृष्टि, व्यापक सूझ-बूझ,प्रखर मानवीय संवेदना एवं अद्भुत निरीक्षण-क्षमता से युक्त रचनाकार ही ऐसी कहानियों की रचना कर सकता था और कहना न होगा कि यशपाल अपनी कहानियों में एक ऐसे ही समर्थ रचनाकार के रूप में सामने आते हैं ।"[२१]

यशपालजी की प्रमुख कहानियों में हलाल का टुकड़ा, डाक्टर, चार सौ बीस, एक सिगरेट, गर्मी की खुशी, मंगला, सच बोलने की भूल, भूख के तीन दिन, उत्तराधिकारी, रोटी का मोल, महादान, चोरबाजारी के दाम, कम्बलदान, दुःख, कर्मफल, परदा, आदमी का बच्चा, करवा का व्रत आदि को गिनाया जा सकता है ।

आधुनिक काल में कदाचित कहानी को लेकर अनेक आंदोलन चलाए गए हैं । स्वातंत्र्योत्तर कहानी, नई कहानी, अकहानी, अगली कहानी, समानान्तर कहानी, सचोट कहानी, सचेतन कहानी, सहज कहानी, सक्रिय कहानी, साठोत्तरी कहानी, समकालीन कहानी जैसे अनेक कहानी आंदोलनों से कहानी की विकासयात्रा गुजरी है । वस्तुतः येसारे आंदोलन वितंडावाद को बढ़ावा देते हैं। कहानी-विकास की दृष्टि से यदि हम सचमुच रेखांकित करना चाहें तो स्वतंत्रता के बाद की कहानी को अधिक से अधिक दो विभागों में रख सकते हैं- नई कहानी और समकालीन कहानी ।

"नई कहानी" का प्रारंभ सन् १९५० से माना जाता है । नयी कहानी की कथ्यगत प्रवृत्तियों में यथार्थ के प्रति नया रुख, संबंधों के बदलाव, दाम्पत्यगत रूढ़ियों की ईमानदार स्वीकृति नारी-पुरुष के प्रकृत काम-संबंधों का स्पष्ट स्वीकार,मध्यवर्गीय जीवन और व्यक्ति कहानी के केन्द्र में, महानगरीय जीवन बोध, मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद आदि विचार-दर्शनों का प्रभाव, वैयक्तिक चेतना का प्रकाशन, वैज्ञानिकीकरण, औद्योगिकीकरण तथा तकनीकी उन्नति

का जीवन पर प्रभाव, विदेशी सभ्यता और संस्कृति का प्रभाव, परिवेश के प्रति जागरूकता,जीवन के प्रत्येक स्तर पर रोमानीबोध से मुक्ति आदि अभिलक्षणों को रेखांकित कर सकते हैं।[३०]

सन् १९५५ में महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा पूणे से ''कहानियाँ १९५५'' का प्रकाशन हुआ था, इस कथा-संकलन में नयी कहानी के दौर की अनेक चर्चित कहानियाँ संकलित हुई थी जिनमें ''डिप्टी कलेक्टरी'' (अमरकान्त), ''राजा निरबंसिया''(कमलेश्वर), ''बादलों के घेरे''(कृष्णा सोबती), ''गुलकी बन्नो'' (धर्मवीर भारती), ''रसप्रिया'' (रेणु), ''भाई रामसिंह'' (भीष्म साहनी),''हंसा जाइ अकेला''(मार्कण्डेय), ''मवाली'' (मोहन राकेश), ''धरती घूम रही है''(विष्णु प्रभाकर) आदि कहानियों को रेखांकित कर सकते हैं। [३१]

मोटे तौर पर सन् १९५० से १९६५ तक की कहानी को नयी कहानी नाम दिया गया है। नयी कहानी के अन्तर्गत अमरकान्त, उषा प्रियंवदा, कृष्ण बलदेव वैद्य, कृष्णा सोबती, कमलेश्वर, राजेन्द यादव, मोहन राकेश, धर्मवीर भारती, भीष्म साहनी, फणीश्वरनाथ रेणु, मन्नू भण्डारी, मार्कण्डेय, रमेश बक्षी, रामकुमार भ्रमर, शिवप्रसाद सिंह, शेखर जोशी, शैलेश मटियानी, हरिशंकर परसाई, विष्णु प्रभाकर, शशीप्रभा शास्त्री आदि कहानीकारों की गणना की जा सकती है। इन लेखकों के साथ-साथ जैनेन्द्र, यशपाल, अश्क, अमृतलाल नागर,मन्मथनाथ गुप्त आदि पुराने लेखक भी अपने-अपने ढंग से नयी कहानियों की रचना कर रहे थे।

सन् १९६५ से अब तक की कहानी को ''समकालीन कहानी'' की कोटि में रखा जा सकता है। समकालीन कहानी यथार्थ की बहुआयामिता से प्रतिबद्ध कहानी है। जीवन की कोई भी समस्या और कोई भी क्षेत्र इस कहानी के व्यापक फलक से अछूता नहीं रहा। ''आर्थिक स्तर पर जीवन जीने की विषम परिस्थितियों, वैज्ञानिकीकरण, औद्योगिकीकरण आदि के विकास से उत्पन्न नवीन सामाजिक आर्थिक समस्याएँ,पूँजीवाद अर्थतंत्र के भयावह और

त्रासद परिणाम, नैतिक रूढ़ियों और मान्यताओं का विघटन, व्यक्ति के जीवन में घर कर गयी निराशा और उससे उत्पन्न व्यथा और क्रोध, महानगरीय तथा औद्योगिक बस्ती की समस्याएँ, भ्रष्ट राजनीति, सामाजिक व्यवस्था और उसे बदल डालने की व्यग्रता, प्रेम और सेक्स का नूतन बोध, आत्मिक और निजी भावनाओं पर अर्थतंत्र का बढ़ता दबाव और खंडित दरकते हुए पारिवारिक संबंध, नौकरीपेशा नारी की बदलती हुई स्थित, नारी में आधुनिकता ओर पुरातनता का द्वन्द, देश के राजनैतिक परिप्रेक्ष्य का सांगोपांग चित्रण, युवा-आक्रोश, छात्र-अनुशासनहीनता, देश में शिक्षित बेरोजगारी की भयंकर समस्या और योग्यता तथा प्रतिभा की दारुण अवमानना, देश में नौकरशाही का भ्रष्ट व्यवहार और दफ्तरी माहौल आदि आदि जीवन की कितनी-कितनी विविधवर्णी समस्याओं का सशक्त चित्रण समकालीन कहानी में हुआ है। इसलिए डॉ. रमेश कुंतल मेघ इन कहानियों को "तत्काल" और "फिलहाल" के समय के जीवन का साक्षात्कार करानेवाली कहानी बताते हैं।"[३२]

समकालीन कहानी के संदर्भ में डॉ. पुष्पपाल सिंह अपनी टिप्पणी देते हुए लिखते हैं-"समकालीन कहानी की भाषा और शिल्प अत्यन्त समृद्ध है। इस कहानी में भाषा को जीवन के निकट ले जाकर उसे कहानी विधा के अनुरूप सहज और स्वाभाविक रूप प्रदान करने से उसकी संप्रेक्षण क्षमता में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। इसे हम भाषा की सर्वथा नयी तराश कह सकते हैं। गद्यभाषा की सहजता में जीवनधर्मी गंध कितनी अर्थ-क्षमता भर सकती है, वर्तमान कहानी-भाषा इसका प्रमाण है। शिल्प की दृष्टि से भी समकालीन कहानी अत्यन्त समृद्ध हुई है। उसमें व्यंग्य, फैण्टेसी, लोककथा, पौराणिक कथाओं के नूतन संदर्भ तथा गद्य की अनेक विधाओं-एकांकी, निबंध, रिपोर्ताज आदि भी सहजता से समा गये हैं।"[३३]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि हिन्दी कहानी ने लगभग एक शतक पूरा किया है और इस एक शतक की कहानी-यात्रा के विविध पड़ावों के रूप

P|Th
11435

में हम प्रेमचंदकालीन कहानी,प्रेमचंदोत्तर कहानी, नयी कहानी, साठोत्तरी कहानी और समकालीन कहानी आदि को चिह्नित कर सकते हैं।

निम्नलिखित कहानियों को हम विगत शतक की प्रतिनिधि कहानियों के रूप में परिगणित कर सकते हैं-

दुलाईवाली (बंगमहिला); इन्दुमती (किशोरीलाल गोस्वामी); ग्यारह वर्ष का समय (रामचन्द्र शुक्ल); ताई (विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक'); उसने कहा था (चन्द्रधर शर्मा गुलेरी); हार की जीत (सुदर्शन); आकाशदीप, पुरस्कार, ममता (जयशंकर प्रसाद); पंच परमेश्वर, शतरंज के खिलाड़ी, ईदगाह, पूस की रात, नमक का दारोगा,कफ़न, ठाकुर का कुआँ, सद्‌गति, सवासेर गेहूँ (प्रेमचंद); प्रायश्चित मुगलों ने सल्तनत बख्श दी, दो बांके (भगवती चरण वर्मा); दुःख, परदा,करवा का व्रत, हलाल का टुकड़ा, सच बोलने की भूल, महादान (यशपाल), डाकू, चौबीस घण्टे, टांगेवाला(चन्द्रगुप्त विद्यालंकार); खेल, पत्नी, पाजेब, एक गौ, तत्सत, अपना-अपना भाग्य,फोटोग्राफी, ग्रामोफोन का रिकोर्ड (जैनेन्द्र); रोज, नारंगियाँ,सभ्यता का एक दिन, गैंग्रीन, शरणदाता, पठार का धीरज, हिलबोन की बतखें, पगोड़ा वृक्ष (अज्ञेय); रोने का मोल, गूंगे, गदल (रांगेय राघव); तीसरी कसम,रसप्रिया,लाल पान की बेगम, तबे अकेला चलो रे, ठुमरी, पंचलैट (फणीश्वरनाथ रेणु); परमात्मा का कुत्ता, एक और जिन्दगी, इन्सान के खंडहर, जानवर और जानवर, फौलाद का आकाश,आद्रा,मिस पाल, मलबे का मालिक (मोहन राकेश); चीफ की दावत,जख्म, खून का रिश्ता, पहला पाठ (भीष्म साहनी); राजा निरबंसिया,मांस का दरिया, खोई हुई दिशाएँ, दिल्ली में एक मौत (कमलेश्वर); वापसी, जिन्दगी और गुलाब के फूल, कितना बड़ा झूठ (उषा प्रियंवदा); खोटे सिक्के, यही सच है, बन्द दराजों के साथ, सज़ा, आते-जाते, यायावर (मन्नू भण्डारी); गुल की बन्नो, मुर्दों का गाँव, बन्द गली का आखिरी मकान, चाँद और टूटे हुए लोग, कुलटा, सावित्री नंबर दो (धर्मवीर भारती); हंसा जाई अकेला, भूदान, पानफूल, दूध और

दवा (मार्कण्डेय); जिन्दगी और जोंक, दोपहर का भोजन, डिप्टी कलेक्टरी, पलाश के फूल , जनमार्गी, देश के लोग (अमरकान्त); दादी, माँ,आरपार की माला, कर्मनाशा की हार, इन्हें भी इन्तजार है ,मुर्दासराय, तकावी (डॉ. शिवप्रसाद सिंह); छोटे-छोटे राजा, थरमस में कैद कुनकुना पानी, किस्सा शुतुरमुर्ग, कटती हुई जमीन, मेज पर टिकी हुई कहानियाँ, दुहरी जिन्दगी,वायलन पर तिलक का मोद (रमेश बक्षी); लंका विजय के बाद रामराज, भोलाराम का जीव, वैष्णव की फिसलन,रामलाल की ट्रेनिंग,वह जो आदमी है न (हरिशंकर परसाई); प्रेतमुक्ति, मैमुद, दो दुखों का एक सुख, पापमुक्ति, सतजुगिया आदमी, उसने तो नहीं कहा था, सुहागिनी,महाभोज, मिट्टी (शैलेश मटियानी); परिन्दे,पहाड़, लंदन की एक रात (निर्मल वर्मा); सेब,रास्ता इधर से है (रघुवीर सहाय)।

इनके अतिरिक्त इधर की कहानियों में ज्ञानरंजन की "घण्टा" तथा "बहिर्गमन"; काशीनाथ सिंह की "सुख" तथा, "आखिरी रात"; दूधनाथ सिंह की "रक्तपात"; रवीन्द्र कालिया की "नौ साल की" तथा प्रमोद कुमार की "गाँठ" नामक कहानी को प्रतिनिधि कहानी के अन्तर्गत रेखांकित किया जा सकता है । महेन्द्र भल्ला कृत "एक पति के नोट्स" को हिन्दी के कतिपय आलोचक लघु उपन्यास भी मानते हैं , किन्तु वस्तुतः देखा जाए तो यह एक लम्बी कहानी है ।[३४]

इधर डॉ. विभूतिनारायण राय के कुशल संपादकत्व में "शताब्दी साहित्य माला" के अन्तर्गत "कथा साहित्य के सौ वर्ष" नामक ग्रन्थ का प्रकाशन हुआ है । इसमें निम्नलिखित कहानियों को "मील के पत्थर"(Mile-Stone) के रूप में दर्शाया गया है - उसने कहा था (चन्द्रधर शर्मा गुलेरी), कफ़न (प्रेमचंद), गुण्डा (जयशंकर प्रसाद), गैंग्रीन (अज्ञेय), फूलों का कुर्त्ता (यशपाल), चीफ की दावत (भीष्म साहनी), तीसरी कसम (रेणु), परिन्दे (निर्मल वर्मा), डिप्टी कलक्टरी (अमरकान्त) तथा घण्टा (ज्ञानरंजन) [३५]

सुप्रसिद्ध कथाकार तथा कथा-आलोचक राजनेद्र यादव ने आधुनिक

कहानियों का एक संकलन संपादित किया था, जिसका नाम है-''एक दुनिया : समानान्तर''। इस संकलन में उन्होंने कुल बाईस आधुनिक कहानियों को संकलित किया है, जो इस प्रकार हैं- १. जिन्दगी और जोंक (अमरकान्त) २. मछलियाँ (उषा प्रियंवदा) ३. मेरा दुश्मन (कृष्ण बलदेव वेद्य) , ४. बादलों के घेरे (कृष्णा सोबती), ५. खोई हुई दिशाएँ (कमलेश्वर), ६.गुलकी बन्नो (धर्मवीर भारती) ७.परिन्दे (निर्मल वर्मा), ८.सामान (प्रयाग शुक्ल), ९. तीसरी कसम उर्फ मारे गये गुल्फाम (फणीश्वरनाथ रेणु), १०.चीफ की दावत (भीष्म साहनी), ११.यही सच है (मन्नू भण्डारी), १२.दूध और दवा (मार्कण्डेय), १३.एक और जिन्दगी (मोहन राकेश),१४.विजेता (रघुवीर सहाय), १५.शबरी (रमेशबक्षी), १६. टूटना (राजनेद्र यादव), .१७.सेलर (रामकुमार), १८.एक नाव के यात्री (शानी), १९.नन्हों (शिवप्रसाद सिंह, २०. बदबू (शेखर जोशी), २१.प्रेतमुक्ति (शैलेश मटियानी), २२.भोलाराम का जीव (हरिशंकर परसाई)।[३६]

राजेन्द्र यादव जैसे सुधी कथाकार और विवेचक द्वारा संपादित होने के कारण उक्त कहानीकार तथा उनकी कहानियों को हम आधुनिक काल के प्रतिनिधि कहानीकार और प्रतिनिधि कहानियाँ मान सकते हैं।

डॉ. बटरोही ने ''हिन्दी कहानी के अठारह कदम'' नामक कहानी-संकलन में कहानी के प्रारंभ से लेकर कहानी की अभी तक की विकास-यात्रा से कुछ अठारह कहानियों का चयन किया है। इन कहानियों पर एक विहंगम दृष्टिपात करने से हम पिछले लगभग अस्सी-नब्बे बर्षों की कहानियों में से कुछ प्रतिनिधि कहानियों को रेखांकित कर सकते हैं। प्रस्तुत कहानी संकलन में निम्नलिखित कहानियाँ संकलित हैं-

१.इन्दुमती (किशोरीलाल गोस्वामी), २.राखी बंद भाई (वृंदावनलाल वर्मा), ३.उसने कहा था (चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी') ४.पूस की रात (प्रेमचंद), ५.व्रतभंग (जयशंकर प्रसाद), ६.प्रलय की रात्रि (सुदर्शन),७.इनाम (जैनेन्द्र), ८.फूलों का कुर्ता (यशपाल),९.गैंग्रीन (अज्ञेय), १०. प्रायश्चित

(भगवतीचरणवर्मा), ११.समाधि भाई रामसिंह (भीष्म साहनी),१२.आद्रा (मोहन राकेश), १३.पास-फेल (राजनेद्र यादव), १४.अकेली (मन्नू भण्डारी),१५.सुहागिनी (शैलेश मटियानी), १६.दोपहर का भोजन (अमरकान्त),१७.भोलाराम का जीव (हरिशंकर परसाई), १८.हम सफर (मृणाल पाण्डेय) । [३७]

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि प्रायः सभी कथा आलोचकों ने शैलेश मटियानी के कथाकार की सख्शीयत को स्वीकृत किया है । अतः आधुनिकाल के एक प्रमुख सशक्त उपन्यासकार और कहानीकार के रूप में हम शैलेश मटियानी को अंगीकृत कर सकते हैं । विगत लगभग पचास वर्षों से मटियानी जी कथा-साहित्य के क्षेत्र में सृजनरत रहे हैं । सम्प्रति ''इण्डिया टुडे'' (हिन्दी संस्करण) के द्वारा उनके दुखद निधन का संमाचार प्राप्त हुआ ।[३८] जबकि हाल ही में राजेन्द्र यादव ने अपनी प्रसिद्ध कहानी-पत्रिका ''हंस'' में मटियानी की एक लम्बी कहानी प्रकाशित की है । यह कहानी जून-२००१ के अंक में समाप्त होगी । [३९] इस कहानी का शीर्षक है- ''उपरांत'' । कहानी को प्रकाशित करते समय यादव जी को कदाचित ज्ञात भी नहीं होगा कि ''हंस'' में मटियानी जी की यह अंतिम कहानी है । कुछ भी हो अन्त तक सृजनरत रहने का मटियानी का संकल्प पूरा हुआ है । यह एक संतोष की बात है ।

मटियानीजी के कृतित्व-काल का युगबोध :-

हिन्दी के कई कहानीकारों की भाँति शैलेश मटियानी ने भी अपना लेखन-कार्य कविताओं-कहानियों से शुरू किया था । उनकी कविताएँ और कहानियाँ सन् १९५० से ''अमर कहानी'' तथा ''रंग महल'' जैसी पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगी थीं । अतः कहा जा सकता है कि मटियानी की कृतित्व-यात्रा सन् १९५० से प्रारंभ हो गई थी । उनका निधन २४ अप्रैल २००१ में हुआ । इस प्रकार लगभग पिछले ५० वर्षों का उल्लेख हम लेखक के कृतित्वकाल के रूप में कर सकते हैं । यद्यपि मटियानी जी के लेखन में

शैशवकालीन स्मृतियों के रूप में १९५० के पूर्व का कालगत परिवेश भी आ जाता है, तथापि मोटे तौर पर हमने यहाँ पिछले ५० वर्षों की गतिविधियों को रेखांकित करने का प्रयत्न किया है।

जैसा कि ऊपर निर्दिष्ट किया गया है मटियानी जी के रचनाकाल का समय सन् १९५० से शुरू होता है, किन्तु स्मृति-रूप में उसके पहले के समय का युगबोध उनकी कहानियों और उपन्यासों में चित्रित हुआ है। स्वाधीनता पूर्व का भारत, स्वाधीनता प्रेम की झलकियाँ, दूसरे विश्वयुद्ध के समय की झलकियाँ, भारत में और विशेषतः उत्तराखंड में ईसाई मिशनरियों की प्रवृत्तियाँ आदि को परिलक्षित किया जा सकता है। सन् १९४७ में हमारा देश आजाद होता है। आजादी के साथ ही भारत-पाकिस्तान के विभाजन की विभीषिका में देश को झुलसना पड़ता है। देश में जगह-जगह कौमी दंगे फैल जाते हैं। पंडित जवाहरलाल नेहरू भारत के प्रथम प्रधानमंत्री होते हैं, किन्तु वे अनुभव करते हैं कि उनका पंथ कंटकाकीर्ण है। मोहभंग अवस्था में महात्मा गाँधी तो नोआखवली चले जाते हैं। उनके आमरण अनशन के कारण वहाँ कौमी दंगे तत्काल बन्द हो जाते हैं, किन्तु हिन्दू-मुस्लिम दोनों तरफ के कट्टरवादी तत्व वातावरण को निरंतर जहरीला बनाते जाते हैं। ऐसे ही विषाक्त और द्वेषपूर्ण वातावरण में ३० जनवरी १९४८ को दिल्ली स्थित बिड़ला भवन में प्रार्थनासभा के बाद नाथूराम गोड़से द्वारा महात्मागाँधी की हत्या होती है। एक युग और उसका सूरज डूब जाता है।

पूरा देश और विश्व इस आघात से विक्षुब्ध हो जाता है। महात्मा गांधी की हत्या किस राजनीतिक परिवेश में हुई उसका यथार्थ और सटीक चित्रण समशेरसिंह नरूला के उपन्यास "एक पंखुड़ी की तेज धार" में हमें उपलब्ध होता है। पंडित नेहरू और सरदार पटेल दोनों किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं, किन्तु किसी तरह देश को संभालने का संनिष्ठ प्रयत्न करते हैं।

सन् १९५०, २६ जनवरी को हमारा देश एक प्रजासत्ताक राष्ट्र के रूप में उभरकर आता है। इस प्रकार १५ अगस्त और २६ जनवरी इन दोनों

राष्ट्रीय-पर्वों को हम स्वतंत्रता दिवस और गणतंत्र दिवस के रूप में प्रतिवर्ष मानते हैं। पं. नेहरू एक स्वप्नदृष्टा राजपुरुष थे। राष्ट्र की उन्नति के लिए वे पंचवर्षीय योजनाओं को लागू करते हैं। वे शांति और सह-अस्तित्व के लिए विश्व में पंचशील के सिद्धांतों को प्रचारित और प्रसरित करना चाहते हैं। उनके नेतृत्व में राष्ट्र एक नयी करवट लेने लगता है,किन्तु हमारे दुर्भाग्य से स्वाधीनता संग्राम के समय की विभूतियाँ शनैः शनैः हमसे दूर हो जाती हैं। सुभाषचन्द्र बोस तो द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान ही लापता हो गये थे। उनके विमान को अकस्मात हुआ। वे जीवित हैं या मृत उसके संदर्भ में अभी तक वाद-विवाद चलते रहे हैं। सरदार वल्लभभाई पटेल, गोविन्द वल्लभ पंत, मौलाना अबुल कलाम आजाद,डॉ. राजेन्द्र प्रसाद,मोहम्मद रफी किदवाई जैसे प्रखर राष्ट्रवादी नेता एक के बाद एक राष्ट्रीय परिदृश्य से विलुप्त होते गये। पं. नेहरू के नेतृत्व में भाखरानागल, दामोदर बंध, कृष्णसागर बंद जैसी कुछ विराटकाय योजनाओं ने साकार रूप धारण किया, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि पंडित जी धीरे-धीरे गाँधीवाद से दूर होते गये हैं। मार्क्सवाद और दक्षिणपंथ के बीच में उन्होंने समाजवादी समाजरचना का एक नया मार्ग इख्तियार किया, जिसमें वे कुछ हद तक सफल भी रहे।

भारत जब स्वाधीन हुआ तो हमारा देश अनेक छोटे राज-रजवाड़ों में विभाजित था। उनको एकत्र करके एक राष्ट्र बनाने का भगीरथ कार्य हमारे लौह-पुरुष और आधुनिक युग के चाणक्य कहे जानेवाले सरदार पटेल ने किया। जूनागढ़ और हैदराबाद के नवाबों को समझाने का और एतर्थ शाम,दाम, दण्ड, भेद इत्यादि के प्रयोग द्वारा इन दो राज्यों को भारत के गणतंत्र में मिलानेका जो असंभव कार्य सरदार पटेल ने किया उसे अभूतपूर्व ही कहा जाएगा। कश्मीर का प्रश्न पंडित नेहरू ने अपने अन्तगर्त देखा था। कहना न होगा कि यह मामला अभी तक लटक रहा है। आजादी के तुरंत बाद पाकिस्तान ने कश्मीर पर हमला बोल दिया था, उस समय यदि सरदार पटेल की बात मान ली जाती तो यह समस्या कदाचित सदा के लिए हल हो गई

होती। अपनी बदहवासी तथा शांतिदूत की प्रतिष्ठा को बरकरार रखने के लिए नेहरू कश्मीर का मामला राष्ट्रसंघ में ले जाते हैं। यह उनकी भयंकर भूल और अदूरदर्शिता थी। इसे भारतीय राजनीतिक इतिहास का दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि स्वतंत्रता के तुरंत बाद इन दो महान नेताओं के मतभेद बढ़ रहे थे। सरदार पटेल नेहरू की उदारतावादी शांतिवादी प्रवृत्ति से प्रसन्न नहीं थे। पंडित नेहरू स्वप्नदृष्ट थे, सरदार पटेल आर्षदृष्टा। अंतिम वाइसराय लार्ड माउण्ट बेटन भी सरदार पटेल की कूटनीतिज्ञता से आतंकित रहते थे। किन्तु आजादी के तुरन्त बाद सन् १९५० में ३१ अक्तूटर को सरदार पटेल का देहान्त हो जाता है। सरदार पटेल की मृत्यु से भारत के राजनीतिक इतिहास में जो अवकाश (Vaccum) पैदा हुआ वह शायद आज भी पूरा नहीं गया है।

पंडित नेहरू का विश्वास था कि राष्ट्र के विकास के लिए सीमाओं पर शांति का होना बहुत ही आवश्यक है। अतः विश्वभर में वे शान्ति और सह-अस्तित्व के विचारों को प्रसारित करते हैं। अपने पड़ोसियों के साथ वे मैत्रीपूर्ण संबंध बनाए रखने में विश्वास करते थे। भारत-चीन संबंधों को लेकर उन्होंने पंचशील के सिद्धान्तों की घोषणा की थी। किन्तु चीन ने पंडित नेहरू की पीठ में खंजर भोंकने का कार्य किया। सन् १९६२ में चीन ने भारत की उत्तरी सीमा पर हमला बोल दिया। चीन बरसों से तैयारी कर रहा था। हम सोते हुए पकड़े गए थे। युद्ध के बाद युद्ध की तैयारियाँ शुरू हुईं। राष्ट्रसंघ तथा अन्य महासत्ताओं के कारण युद्ध विराम तो हो गया, परन्तु सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण ऐसा कुछ प्रदेश चीन के कब्जे में चला गया। चीन के इस विश्वासघात के आघात में ही सन् १९६३ में पंडित जी ने दम तोड़ दिया।

नेहरूजी के पश्चात् लधुकाय वामन किन्तु विराट ऐसे स्वनामधन्य लाल बहादुर शास्त्री जी ने देश का सुकान संभाला। थोड़े ही समय में शास्त्रीजी ने भारतीय जनता का प्रेम और विश्वास संपादित कर लिया। उन्हीं दिनों भारत-पाकिस्तान युद्ध हुआ, जिसमें शास्त्रीजी ने भारत की ताकत का लोहा

पाकिस्तान से मनवाया। किन्तु युद्ध विराम के बाद ताश्कंद करार करते समय विदेश में ही शंकास्पद स्थितियों में उनकी मृत्यु हुई। "गढ़ आला पर सिंह गेला" की उक्ति का एक बार पुनः ऐतिहासिक पुनरावर्तन हुआ। युद्ध में विजेता हुए पर शास्त्री जी को खोना पड़ा।

शास्त्री जी के उपरांत सन् १९६६ में श्रीमती इन्दिरा गाँधी और मोरारजी देसाई के बीच सत्ता-संघर्ष और फिर समझौता हुआ, जिसके तहत श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने प्रधानमंत्री पद संभाला। सन् १९६८ में राष्ट्रपति के चुनाव के संदर्भ में कांग्रेस के कई वरिष्ठ नेताओं और इन्दिरागाँधी के बीच संघर्ष हुआ। कांग्रेस एक बार पुनः विभाजित हुई- सिण्डीकेट और इण्डिकेट के रूप में। मोरारजी देसाई, निलम संजीव रेड्डी, कामराज, सदोबा पाटिल आदि कई वरिष्ठ कांग्रेसी नेता सिण्डीकेट में रहे। सिण्डीकेट के ही वजन पर एक नया शब्द अस्तित्व में आया "इण्डिकेट"।

जिन्होंने इन्दिरा जी को समर्थन दिया वे इण्डिकेट या इन्दिरा कांग्रेस के नेता कहलाये। देश के इतिहास में प्रथम बार हुआ कि शासक पक्ष द्वारा समर्थित उम्मीदवार को राष्ट्रपति पद के चुनाव में हराया गया हो, कांग्रेस के वरिष्ठ नेता नीलम संजीव रेड्डी को हराकर वी.वी.गिरि को राष्ट्रपति बनाया गया था।

उन दिनों इन्दिराजी ने कई शकवर्ती निर्णय लिये। किन्तु बाद में सरकार के गठन को लेकर और प्रधानमंत्री के पद को लेकर आंतरिक झगड़े हुए। इलाहाबाद कोर्ट में इन्दिराजी की पराजय हुई और समाजवादी पक्ष के नेता राजनारायण जीत गये। इन्दिराजी ने सत्ता छोड़ने की अपेक्षा आपात्कालीन स्थिति (Imergency) घोषित कर दी। अनेक नेताओं को जेलों में ठूंस दिया गया। इमर्जेन्सी के उठते ही लोक-ज्वार सामने आया। लोकनायक जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में भारत के सभी बड़े-बड़ नेता एकत्रित हुए और इन्दिराजी को बहुमत से हराया। गाँधीवादी विचारधारा के समर्थक मोरारजी भाई देसाई प्रधानमंत्री हुए। देश में प्रथम बार एक अहिन्दी क्षेत्र का

व्यक्ति प्रधानमंत्री पद पर आसीन हुआ। चौधरी चरणसिंह नायब प्रधानमंत्री हुए। अटल बिहारी वाजपेयी विदेशमंत्री हुए। इन्दिरा गाँधी, संजय गाँधी, धीरेन्द्र ब्रह्मचारी और उनकी चौकड़ी को लेकर शाह-कमीशन बिठाया गया।

सत्ता-सूत्र सँभालने के बाद सकारात्मक राजनीति हुई होती तो शायद परिणाम दूसरे प्रकार के होते। किन्तु शाह-कमीशन के कारण श्रीमती इन्दिरा गाँधी हमेशा अखबारों की सुर्खियों में रही। जनता-मोर्चा में अलग-अलग विचारधारा वाले नेता थे। इन्दिराजी के खिलाफ चुनाव अभियान में तो ये सब साथ, किन्तु चुनाव में हासिल अभूतपूर्व और अश्रुतपूर्व असफलता को ये नेता पचा नहीं पाये और उनके आपसी मतभेद सतह पर आने लगे। चरणसिंह, जगजीवनराम तथा राजनारायण जैसे नेताओं के कारण मोरारजी भाई देसाई ने दो-एक साल में ही प्रधानमंत्री पद से त्यागपत्र दे दिया। नीलम संजीव रेड्डी की राजनीति के कारण कांग्रेस बड़े पुराने एवं वरिष्ठ हरिजन नेता जगजीवनराम प्रधानमंत्री नहीं बन पाये और गाँधी जी का सपना सपना ही रह गया। चौधरी चरणसिंह कुछ समय के लिए प्रधानमंत्री तो हुए पर सरकार को चला नहीं पाये और आम चुनाव हुआ जिसमें इन्दिरा गाँधी पुनः एक बहुत बड़ी ताकत के रूप में उभरकर आयीं। प्रस्तुत समय की राजनीतिक गतिविधियों पर निम्नलिखित काव्य-पंक्तियों में व्यंग्य किया गया है-

''राजघाट पर कसमें खायीं राजपाट में तोड़ चले।
छोड़ अहिंसा सत्य साधना सत्ता के पथ पर दौड़ चले
पन्द्रह अगस्त उन्नीस सौ सैंतालिस
वह मध्यबिन्दु है हमारी आजादी के इतिहास का
जहाँ से हमने पलटना सीखा, जहाँ से हमने उलटना
सीखा, जहाँ से हमने मुड़ना सीखा
सिद्धांतों से सिद्धांतों की खोल को ओढ़कर
और जहाँ से प्रारंभ हुआ गांधीवाद के ह्रास का
तीस वरसों के बाद जनता कुछ आश्वस्त हुई

किन्तु उतने ही महीनों में वे सारी उम्मीदें ध्वस्त हुईं।''[४०]

स्वाधीनता के लगभग तीस वर्षों के बाद एक गैर-कांग्रसी सरकार अस्तित्वमें आयी थी, किन्तु दो-ढाई वर्षों में ही उसका ह्रास हो गया। इन्दिरागाँधी पुनः सत्ता में आयीं। उन्हीं दिनों में अलग पंजाब को लेकर खालिस्तान की मांग तेज हुई। भिंडरानवाले एक सशक्त सिक्ख धार्मिक नेता के रूप में उभरकर आये। वस्तुतः अकालियों को दबाने के लिए ही इन्दिरा गाँधी ने भिंडरानवाले के भूत को जगाया था। इन्दिरा गाँधी का यह शास्त्र बूमरेंग साबित हुआ। भिंडरानवाले की शक्ति का दमन करने के लिए इन्दिरागाँधी ने ''आपरेशन ब्लू स्टार'' शुरू किया और अमृतसर के स्वर्ण मंदिर पर धावा बोल दिया। स्वर्ण मंदिर में पहली बार भारतीय सेना नेप्रवेश किया। इसकी बहुत बड़ी कीमत इन्दिरा गाँधी को चुकानी पड़ी। ३१ अक्टूबर १९८४ में श्रीमती इन्दिरा गाँधी के ही दो सुरक्षा कर्मचारियों ने उनको गोलियों से छलनी कर दिया। इन्दिरा गाँधी की हत्या के कारण दिल्ली में कुछ काँग्रेसी नेताओं के इशारे पर भयंकर लोमहर्षक सिक्ख हत्याकांड हुआ। सिक्खों में दहशत फैल गया। कई सिक्खों ने तो अपने प्राण बचाने के लिए दाढ़ी का मुण्डन भी करवा दिया। पगड़ीको भी छोड़ दिया। किन्तु इसके बड़े दूरगामी परिणाम देश की राजनीति पर पड़े। सिक्खों का विश्वास कांग्रेस से उठ गया। अभी भी कोई मरहम उनके घावों को ठीक नहीं कर रहा है। धर्म निरपेक्ष विचारधारा में माननेवाले सिक्ख इस समय दक्षिण पंथियों के साथ मिल गये हैं। उसका मुख्य कारण सन् १९८४ का सिक्ख हत्याकांड ही है। वस्तुतः दो पागल सिक्ख हत्यारों के लिए समूचे सिक्ख समुदाय को दंडित करना नीति के किसी भी मानदण्ड के अनुसार न्यायोचित नहीं कहा जा सकता। उस दिन न्याय और विवेक की हार हुई थी। अंधकार और पाशविकता की जीत हुई थी।

जनवरी २००३ के हंस में प्रकाशित मन्नू भंडारी के ''दो चेहरे'' में पुनः इस मुद्दे को उठाया गया है। सन् १९८४ के सिक्ख हत्याकांड के कारणों

पर प्रकाश डालने वाला एक किस्सा वहाँ सामने आया है। इस कांड का एक दूसरा पहलू उसमें उभरकर आया है। एक समाजकर्मी महिला के साथ लेखिका जब कैम्प में आये लोगों के लिए दूध लेने ग्वालों के मुहल्ले में जाती है तब एक ग्वाला भड़ककर कहता है-"पूछिये इनसे कि क्या होता रहा इनके यहाँ दो दिन तक ? दो रात तक इनके यहाँ जो भांगड़े होते रहे... दिए जले...आतिशबाजियाँ होती रहीं...हमारी माँ को (इन्दिरा गाँधी) धोखे से गोलियों से भूनकर ऐसा जश्न मना रहे थे ये लोग यहाँ की बर्दाश्त नहीं हुआ हमसे। इत्ते बरस हो गये हमको... शादी-ब्याह, तीज-त्यौहार तक देखे पर ऐसा जश्न...और पूरा का पूरा मोहल्ला...तो साहब हमारी रगों में भी तो पानी नहीं बहता न ? जब बर्दाश्त के बाहर हो गई सारी बात तो आ गए गाँव के सारे लोग और ठिकाने लगा दिया।"[४१]

तो दूसरी तरफ कैम्प के एक बूढ़े सिक्ख-सरदारका यह दर्द- "तुम ही बताओं बिब्बी, कितनी बार हम उजडेंगे और कितनी बार बसेंगे ? पंजाब से लुट-पिटकर आया था...सब तबाह हो गया था पर इन बच्चों को बचा लाया था, तब ये बच्चे छोटे-छोटे थे, पर मेरी बाहों में जोर था बिट्टी...बाहों में जोर और मन में हौंसला था...जवान था न मैं। खूब मेहनत-मजदूरी करके इन्हें पाला-पोसा,बड़ा किया... काम-धंधे पे लगाया...शादी-ब्याह किए...पर अब ? आज इन तीन-तीन बेवाओं और इनके छोटे-छोटे बच्चों को कौन पालेगा ? कैसे बड़े होंगे ये बच्चे ?"[४२]

इस संदर्भ में लेखिका की टिप्पणी भी देखिए- "बस मन में अगर कुछ रह गया तो सरदारजी का वह पथराया चेहरा, जिसकी झुर्री-झुर्री पर मनुषय की क्रूरता और बर्बरता की कहानी लिखी थी और लिखा था उनका एक अनुत्तरित प्रश्न। पर क्या करूँ जब तक इस चेहरे को काटता हुआ ग्वाले का वह चेहरा भी उभर ही आता है जिसकी क्रोध से सुलगती आँखों से भी एक प्रश्न उभर रहा था।"[४३]

पर फिर भी एक बात तो कहनी ही होगी कि चन्द बेसमझ वहशी लोगों

की सज़ा समूची जाति को देना किसी लिहाज से वाजिब नहीं कहा जाएगा। इस संदर्भ में पिछले साल (सन् २००२ फरवरी में हुए गोधराकांड तथा उसके बाद कई-कई महीनों तक चले मानव-संहार) गुजरात में हुए घोर मानव-संहार कांड को भी मूल्यांकित किया जाना चाहिए।

श्रीमती इन्दिरा गाँधी की हत्या के कारण समग्र देश में सहानुभूति की जो लहर चली उसमें कांग्रेस को बहुत ज्यादा लाभ हुआ। एक युवा-प्रधानमंत्री के रूप में राजीव गाँधी उभरकर आये। संजय गाँधी का निधन एक हवाई अकस्मात में पहले ही हो चुका था राजीव गाँधी को "कम्प्यूटर बोय" कहा जाता था। अतः उनके समय में अधुनातम कम्प्यूटर टेक्नोलोजी विकसित हुई। गुजरात के सपूत श्याम पित्रोड़ा की सहायता से राजीव गाँधी ने समग्र देश में एक टेलिफोनिक नेटवर्क स्थापित किया। उससे इन्फर्मेशन टेकनोलोजी (I. T.) की गति क्षिप्रतर हुई। सन् १९८५ में जो चुनाव हुए उसमें कांग्रेस बहुतमति से आगे आयी। उस समय कांग्रेस के लिए, विशेषतः युवा नेता राजीव गाँधी के कारण समग्र देश में एक उत्साह की लहर थी, जिसके रहते इस स्थिति का निर्माण हुआ कि कांग्रेस के नाम पर जो भी व्यक्ति खड़े हुए वे सब चुनाव जीत गये। उन्हीं दिनों राजीव गाँधी के खिलाफ "बोफोर्स कांड" को खूब उछाला गया। इसके कारण कांग्रेस तथा राजीव गाँधी की प्रतिभा-प्रतिष्ठा को हानि पहुँची। मांडा के राजा विश्वनाथ प्रताप सिंह, जो राजीव मंत्रिमंडल के केबिनेट मंत्री थे, कांग्रेस से अलग हुए। मध्यावधि चुनाव में कांग्रेस की हार हुई और विश्वनाथ प्रताप सिंह गठबंधन सरकार के प्रधानमंत्री हुए। यहाँ से एक तरह से गठबंधन सरकारों का सिलसिला प्रारंभ हुआ।

उन्हीं दिनों भाजपा के नेता लालकृष्ण आडवानी जी ने सोमनाथ से अयोध्या तक की रथयात्रा निकाली। इस रथयात्रा के द्वारा भाजपा के नेता राजनीतिक लाभ उठाना चाहते थे। इस संदर्भ में एक काव्य में कहा गया है -

"बापू ! तुम्हारा किया धरा/ धरा ही रह गया /
यह महान देश जरा-सा रह गया/...:तुम्हारी

भावनाएँ हिन्दू-मुस्लिम एकता की/
'रथयात्रा' के दुश्चक्रों तले कुचली जा रही है /
चेतना तली जा रही है।''[४४]

उनकी रथयात्रा को रोकने का साहस लालू प्रसाद यादव ने दिखाया था। इस रथयात्रा को निरस्त्र करने के लिए प्रधानमंत्री विश्वनाथ प्रतापसिंह ने मंडलपंच का शगूफा छोड़ा। पिछले कई वर्षों से मंडलपंच को कांग्रेस ने भूला दिया था, किन्तु वी.पी. सिंह ने उसे लागू करने का हौसला दिखाया। इस मंडलपंच को पहले गुजरात में बक्षीपंच कहते थे। उनमें सामाजिक एवं शैक्षिक दृष्टि से पिछड़ी ऐसी कई जातियाँ समाविष्ट थीं। सन् १९७८ के आसपास गुजरात सरकार ने बक्षीपंच को लागू किया था और उसके तहत १०% आरक्षण की व्यवस्था उन जातियों के लिए थी, किन्तु मंडलपंच के अंतर्गत आरक्षण का प्रतिशत १० से २७ % कर दिया गया।

वस्तुतः वी.पी.सिंह का मुद्दा बिलकुल सही था और सामाजिक न्याय की नीति के अनुरूप था। किन्तु उस समय देश भर के मीडिया ने वी.पी. सिंह को एक खलनायक के रूप में चित्रित किया। मंडलपंच के कारण समूचे देश में जो विरोध हुआ उसके कारण वी.पी.सिंह का प्रधानमंत्री पद छोड़ना पड़ा। बाद में उन तमाम राजनीतिक पार्टियों ने अपने -अपने चुनाव घोषणा-पत्रों में मंडल-पंच का समर्थन किया था, जिसको लेकर वे वी.पी.सिंह की भर्त्सना कर रहे थे। उसके बाद अस्थायी सरकारों का दौर शुरू हुआ। सन् १९९१ में तमिलनाडु के पेयम्बतूर में मानव बोम्ब के द्वारा राजीवगाँधी की निर्मम और नृशंस हत्या हुई। सन् १९८५ के चुनाव में भाजपा का बिलकुल ह्रास हो गया था। उसे संसद में केवल दो सीटें प्राप्त हुई थीं। किन्तु रथयात्राओं के द्वारा हिन्दू कार्ड को खेलकर उन्होंने अपने स्थान को शनैः शनैः मजबूत बनाया। राजीव गाँधी की हत्या का वैसा लाभ काँग्रेस को नहीं हुआ, जैसा लाभ इन्दिरा गाँधी की हत्या से हुआ था। फिर भी एक बड़ी पार्टी के रूप में कांग्रेस सामने आयी। बीच में कुछ समय के लिए पुराने यंग ''यंगटर्क''

चन्द्रशेखर जी कुछ महीनों के लिए प्रधानमंत्री हुए। सन् १९९१ के आम चुनाव के पश्चात् कुछ राजनीतिक पार्टियों का साथ लेकर पी.वी. नरसिंहराव के नेतृत्व में कांग्रेस सरकार की स्थापना हुई। नरसिंह राव के समय में ही ६ दिसम्बर १९९२ को बाबरी मस्जिद को ढहा दिया गया। उस समय उत्तर-प्रदेश में भाजपा के मुख्य मंत्री कल्याणसिंह की सरकार थी। भाजपा के नेता बराबर कहते गये कि वे सुप्रिम कोर्ट के आदेश का पालन करेंगे, किन्तु दूसरी तरफ सैकण्ड कैडर की नेतागिरी तो कट्टरवादी हिन्दुत्व की भावना को बराबर उकसा रही थी। भाजपा की इस दोमुंही राजनीति को लेकर एक कविता में कहा गया है-

"मित्र ! तुम अपनी इस दोमुंहे साँपवाली नीति कब छोड़ोगे ?/ तुम्हारा एक मुंह तो कुछ कहता है/ पर दूसरा मुंह कुछ दूसरा ही कहता है/ या तो काट डालो उस पहले वाले मुंह को/ या ले लो उसका उत्तरदायित्व अपने सिर पर / पर मुझे मालूम है मेरे मित्र !/ तुम ऐसा नहीं करोगे/ तुम्हारा यह दो मुंहे साँपवाला चरित्र / तुमको ऐसा नहीं करने देगा।"[४५]

पी.वी. नरसिंहराव ने किसी प्रकार अपने कार्यकाल के पाँच वर्ष पूरे किये, किन्तु इन पाँच वर्षों में उनकी सरकार पर कई प्रकार के हमले होते रहे। जे. एम. एम. काण्ड में तो स्वयं पी.वी.राव भी फंसे थे और बाद में प्रधानमंत्री न रहने पर अदालत ने उनको दोषी भी ठहरा या था और दंडित भी किया। पी.वी. नरसिंहराव की शिथिल राजनीति, बाबरी मस्जिद काण्ड, धर्म और राजनीति का मिश्रण आदि परिस्थितियों के कारण सन् १९९५ के बाद जो आम चुनाव हुआ उसमें भाजपा को स्पष्ट बहुमत तो नहीं मिला, किन्तु एक बड़ी पार्टी के रूप में वह अस्तित्व में आयी। राष्ट्रपति ने सरकार गठन का आमंत्रण दिया और अटलबिहारी बाजपेयी के नेतृत्व में अनेक छोटी-मोटी पार्टियों को लेकर सरकार का गठन हुआ। सर्वप्रथम भाजपा का प्रधानमंत्री दिल्ली तख्त पर बैठा। किन्तु उनकी यह सरकार केवल तेरह दिन चली।

तेरह दिन के बाद विश्वास-मत प्राप्त करने में अटलबिहारी बाजपेयी असफल रहे। फलतः उन्होंने प्रधानमंत्री पद से त्यागपत्र दे दिया। उसके बाद के कर्नाटक के जनता दल के मुख्यमंत्री देवगौड़ा प्रधानमंत्री हुए। कांग्रेस तथा अन्य अनेक प्रगतिवादी पार्टियों का उन्हें समर्थन था, किन्तु देवगौडा की सरकार भी अधिक न चली और सन् १९९८ में मध्यावधि चुनाव हुआ। इस चुनाव में भी किसी राजनीतिक पार्टी को स्पष्ट बहुतमत हासिल नहीं हुआ और देश को फिर से अनेक पार्टियों वाली संसद (Hung parliament) का मुखापेक्षी होना पड़ा। इस बीच पुनः एक बार बाजपेयी प्रधानमंत्री हुए और उनकी सरकार तेरह महीने तक चली। सन् १९९८ के मध्यावधि चुनाव के बाद हंगपार्लियामेण्ट का गठन हुआ। उसमें चौबीस पार्टियों का भाजपा के साथ गठबंधन हुआ, जिसे राष्ट्रीय जनतांत्रिक मोर्चा (National Development Alliance) ऐसा नाम दिया गया। सम्प्रति उसी का शासन चल रहा है। इन पाँच वर्षों में सरकार के सामने कई संकट के बादल आये, किन्तु कूटनीतिक चालों द्वारा उन्हें निरस्त्र कर दिया गया। अब इस वर्ष (सन् २००३) पुनः आम चुनाव होने वाला है।

तेरह दिन के शासनकाल में भाजपा ने विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनी (Multi National Company) एनरान के साथ समझौता किया था, जिसका खामियाजा अभी भी महाराष्ट्र सरकार भर रही है। एनरान की बीजली यहाँ की बिजली से सात गुना महंगी है और एनरान के साथ करार हुए हैं कि उसके तहत यदि एनरान से बिजली न लें तो भी आगामी चालीस वर्षों तक प्रतिवर्ष चार हजार करोड रूपयों का भुगतान एनरान को करना पड़ेगा। इस करार के कारण महाराष्ट्र की आर्थिक स्थिति को जबरदस्त धक्का पहुँचा है और देशभर में बुद्धिजीवियों द्वारा विरोध हो रहा है। भाजपा, वी.एच.पी. तथा शिवसेना के लोग एक तरफ तो स्वदेशी की बात करते हैं, किन्तु उनके ही शासनकाल में बहुराष्ट्रीय कंपनियों को छूटा दौर दिया गया है। इसे दो-मुंही नीति नहीं तो और क्या कहेंगे ? एक इस्ट इण्डिया कंपनी को निकाल बाहर करने में

हमें ढाई सौ साल लगे थे, तो इतनी सारी बहुराष्ट्रीय कंपनियों को हम कैसे निकाल पायेंगे ? वस्तुतः अर्थशास्त्र का सामान्य से सामान्य ज्ञान रखनेवाला विद्यार्थी भी इतना तो समझ ही सकता है कि इन कंपनियों के रहते हमारा देश आर्थिक दृष्टया दिवालिया (Bankcrupt) हो जायेगा। उसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं है।

देश के आंतरिक मामलों में, प्रादेशिक मामलों में,येन केन प्रकारेण सरकार चलाने में हमारे नेताओंकी सारी कूटनीति (Polity) खर्च हो जाती है। विदेशी राजनीति में कूटनीति का नितान्त अभाव दृष्टिगोचर हो रहा है। हमारे किसी पड़ोसी देश के साथ हमारे संबंध सहज नहीं हैं। पाकिस्तान के साथ सौहार्द की स्थिति स्थापित करने हेतु हमारे सम्माननीय प्रधानमंत्रीजी ने लाहौर बसयात्रा सर्विस शुरू की और उसमें स्वयं भी लाहौर हो आये, किन्तु उसके तुरंत बाद कारगिल युद्ध में मुंहकी खानी पड़ी। जब हमारे प्रधानमंत्री जी बस यात्रा कर रहे थे, तब पाकिस्तानी सैनिक कारगिल में ऊँची चोटियों पर अपनी चौकियाँ स्थापित कर रहे थे। कारगिल युद्ध दौरान एक-दो-महीने, पत्र-पत्रिकाओं, अखबारों तथा टी.वी. के द्वारा हमें जो समाचार प्राप्त हो रहे थे उसमें यही उल्लेख मिलता है कि अब फलाँ चौकी को हमने वापिस ले लिया, फलाँ चौकी पर हमने पुनः कब्जा कर लिया। तो उसमें भारत सरकार की क्या स्थिति रही ? पाकिस्तान ने जिन चौकियों को जीत लिया था, उनको हमने पुनः प्राप्त किया। पर किस कीमत पर ? हमारे कितने ही जवान शहीद हुए, करोडों का खर्चा हुआ। यह तो केवल सामान्य बुद्धि का प्रश्न है कि जब तराई से ऊँचाई पर एक जवान मरता है तो तराई या घाटी में दस मरते हैं। किन्तु सामान्य जनता को उल्लू बनाया जाता है। कारगिल युद्ध में कितनी ही मांओं ने अपने बेटे खोये, कितनी ही बहनों ने अपने भाई और कितनी ही सौभाग्यवती स्त्रियों ने अपने सौभाग्य को खोया है। क्या इसकी क्षतिपूर्ति कभी हो सकती है ?

इन दो-तीन वर्षों में भाजपा सरकार पर कई खतरे आये और टल

गये । सरकार की सारी शक्ति गठबंधन को बनाए रखने में ही खर्च हो जाती है । देश की सुरक्षा जैसे मामलों में भी सरकार शंका से पर नहीं है । तहलका काण्ड ने यह सिद्ध कर दिया है । तहलका कांड तथा यू.टी.आई. काण्ड जैसे कांडों के कारण आम जनता का सरकार से विश्वास उठता जा रहा है । सांप्रदायिकता सिर उठा रही है । सन् २०००-२००१ में प्रयाग में कुंभमेला का आयोजन खूब धूमधाम से हुआ । सरकार का समूचा ध्यान वहाँ पर केन्द्रित था। हुरियत के नेता या तालिबान या पाकिस्तान के घुसपैठिये कोई फसाद न खड़ा करे यह सरकार की चिन्ता का विषय था । यहाँ इस समय कुंभ मेले का उल्लेख एक विशेष संदर्भ के कारण कर रहे हैं, क्योंकि हंस के मई-जून २००१ के अंकों में शैलेश मटियानी की एक लंबी कहानी ''उपरांत'' प्रकाशित हुई है जिसमें कुंभ मेले का कई स्थानों पर संदर्भ आया है । यह मटियानी जी की अंतिम कहानी है, क्योंकि २४ अप्रैल २००१ को उनका निधन हो गया ।

राजनीतिक दृष्टि से विचार किया जाए तो पिछले दस वर्षों को हम राजनीतिक अस्थिरता के वर्ष कह सकते हैं । इन वर्षों में अनेक राजनीतिक उथल-पुथलें हुईं हैं । कांग्रेस ने अपना केन्द्रीय स्थान गँवाया है । भाजपा एक बड़ी पार्टी के रूप में अस्तित्व में आयी है । इधर फिर उसकी लोकप्रियता में ओट आने लगी है ।

सन् २००१ के प्रारंभ में ही गुजरात ने प्रलयकारी भयंकर भूकंप को झेला । कच्छ का भूज शहर तो नेस्तोनाबूद हो गया । इस भूकंप ने भयंकर तबाही बरपा की । हजारों लोग मारे गये । भारत के सभी प्रान्तों तथा दुनिया के सभी देशों से सहायता का तांता बंध गया । समग्र गुजरात पुनः खड़ा हो सके उससे कई गुना ज्यादा सहायता मिली । यद्यपि गुजरात तथा केन्द्र में भाजपा सरकार होने के बावजदू सरकार के सहायता-कोश से अत्याति अल्प राशि गुजरात को मिली । किन्तु दूसरे प्रदेशों और अन्य देशों से भरपूर सहायता प्राप्त हुई । इस प्राकृतिक प्रकोप ने सामान्य मनुष्यों के जीवन को तहस-नहस कर दिया । उनका जीवन तो यातनामय हो गया, परंतु तथाकथित

सेवकों तथा राजनेताओं की चांदी हो गई। इस कुदरती प्रकोप से भी उन्होंने अपनी जेबों को तर किया। सन् १९९८ में ''धपेल'' नामक एक उपन्यास प्रकाशित हुआ था। प्रस्तुत उपन्यास के धपलेबाबा अपने ज्वार में किसी के मर जाने पर बहुत प्रसन्न हो जाते थे क्योंकि प्रेत-भोज के रूप में अच्छा खाना मिलेगा। इस आशा से उनका रोम-रोम पुलकित हो जाता था ऐसा प्रतीत होता है कि हमारा पूरा देश ऐसे 'धपेल बाबाओं'' से भरा पड़ा है।

पिछले दस-पंद्रह वर्षों के इतिहास पर दृष्टिपात करें तो साबित होगा कि यह युग कौभांडों का युग है। सर्वप्रथम बोफोर्स कांड हुआ जिसमें २६४ करोड़ के घोटाले की बात थी। उसके बाद हर्षद मेहता कांड, बिहार चारा कांड, एनरान कांड, तहलका कांड, बाल्को कांड, यू.टी.आइ. कांड, कोकिन कांड जैसे अनेकों कांडो से देश को गुजरना पड़ा है। ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे राजनेताओं तथा लोगों को भ्रष्टाचार रास आ गया है। हमारी संवेदना ही शायद भोंथरी पड़ गई है।

मटियानी जी का लेखन लगभग आधी सदी में फैला हुआ है। इस अर्ध शताब्दी के लेखन-कार्य में मटियानी जी की संवेदना हमेशा दलित, पीड़ित, शोषित तथा दीन-दुखियारे लोगों के साथ रही है। किन्तु इधर पिछले कुछ वर्षों से वे शायद टूट गये थे और फलतः दक्षिणपंथी लोगों और राजनीतिक पार्टियों की ओर उनकी रुझान हो गई थी। मटियानी जी की इस परिस्थिति के संदर्भ में ''हंस'' के ''अपना मोर्चा'' स्तम्भ में एक पाठक ने यथार्थ ही कहा है :

''पहाड़ से उनके निकलने या पलायन करने और उन दिनों में बम्बई में उनका जीवन जिस यातना का गवाह है वह कितने लोगों को मिला है ? असल में इस आदमी को तो तभी खत्म हो जाना चाहिए था। सोचिए कि कितना जीवट रहा होगा। मुझे नहीं मालूम कि प्रेम में उनका अपमान हुआ है कि नहीं, मगर जिनका अपमान होता है, उनका जीना कम मायने नहीं रखता। वैसे तो आज भी आत्महत्याएँ होती हैं। प्रेम में धोखा एक बात है और

अपमान दूसरी बात। तब भी यह आदमी नहीं मरा। जिसके जीवना का ६/७ भाग संघर्ष में कटा हो, वह अगर अपने जीवन के बेहद कठिन और विक्षिप्त क्षणों में सुविधाओं और सुरक्षा को पाने के जरियों से जुड़ने लगा हो तो उसमें आश्चर्य क्या है ?...मटियानी जी जैसे योग्य साहित्यकार को हिन्दी से जुड़ी कोई ऐसी जगह अवश्य मिलनी चाहिए थी, जहाँ वे कुछ निश्चित हो सकते थे। सारे भवन क्या अवसरवादियों के लिए ही है ? जीवन के आखिरी और बीहड़ वर्षों में अगर विक्षिप्त मटियानी जी का चिंतन किसी और दिशा में घूम गया,तो उसे नकारने का हक या उसे अलेखक सिद्ध करने का अधिकार तो किसी ने आपको दिया नहीं। वे इस अवस्था में भी कुछ लिखते रहे क्या यह कम प्रशंसनीय है।''[४६]

मटियानी जी का जीवन-संघर्ष :-

प्रस्तुत प्रबंध में हम मटियानी जी की कहानियों को एक विशेष परिप्रेक्ष्य में देख रहे हैं। रचना और रचनाकार का संबंध सृष्टि और उसके रचयिता जैसा है। सब जगह विद्यमान पर प्रकट तथा अदृश्य Present every where but visible no where अतः रचना की वस्तु और परिप्रेक्ष्य के अनुशीलन के लिए रचनाकार के जीवन का अनुशीलन भी अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। मटियानी जी स्वयं मानते हैं-''साहित्यकार को सिर्फ कृतित्व के ही नहीं प्रत्युत व्यक्तित्व के निकष पर भी आँकना आवश्यक है।''[४७]

यहाँ मुझे मेरे निर्देशक डॉ. पारुकान्त देसाई की ग़ज़ल का एक शेर याद आ रहा है-

''मिले थे गम कई तो फिर यारो हम संभल बैठे
मिली होती अगर खुशियाँ तो कितने बेजुबां होते ।।''[४८]

मटियानी जी भी यह जो शब्दों की खेती करने में सफल रहे हैं, उसका कारण भी उनके जीवन-संघर्ष की अनवरत यात्रा है। मटियानी जी का जीवन जन्म से मृत्यु पर्यन्त एक स्वप्नजीवी और स्मृतिजीवी व्यक्ति की यातनाओं

का जीवन है।

मटियानी जी का जन्म १४ अक्टूबर सन् १९३१ में अलमोड़ा जिले के बाड़ेछीना गाँव में हुआ था। वस्तुतः शैलेशजी का जन्म का नाम तो रमेशचन्द्र सिंह मटियानी है। "शैलेश" उनका धारण किया हुआ नाम है। "शैल" कहते हैं पहाड़ को और मटियानीजी पहाड़ों के हैं, अतः उन्होंने यह नाम धारण किया होगा। उनके पिता बिशनसिंह मटियानी का निधन शैलेशजी के बचपन में ही हो गया था। उसके तुरंत बाद माता का भी अवसान हो गया। शैशव की यह कष्टदायक स्मृति वे कभी विस्मृत नहीं कर पाये। "मेरी तैंतीस कहानियाँ" की भूमिका में उन्होंने इसका संकेत दिया है। यथा- "उम्र के बारहवें-तेरहवें वर्ष में मां की अर्थी के आगे-आगे चलना और "सत्त बोलो गत्त है, सत्त बोलो मुक्ति है" का सुनना इस स्मृति में से उतरता नहीं है।"[४९] यह जो वज्रपात हुआ, उस संदर्भ में इसी पुस्तक में वे आगे लिखते हैं-

"वय का बारहवाँ वर्ष कुछ ऐसा बायाँ सिद्ध हुआ था मेरे लिए, कि इसी एक साल में माता-पिता दोनों की स्नेहाश्रय की शीतल छाँव मेरे तिरछी टोपी पहनने वाले तकदीर के टेढ़े सिर पर से उठ गई।...और मेरे छोर मूल्या (अनाथ) जीवन की तपन भरी अनिश्चित भविष्य यात्रा आरंभ हो गई थी। तब तक मैंने सिर्फ चौथी तक शिक्षा प्राप्त की थी। पाँचवी में प्रवेश पाकर, लौट आना पड़ा था और एक बंधी-बंधाई सी दिनचर्या आरंभ हो गई थी। सुबह उठकर नौले पानी भरने जाना। लौटकर गाय-भैंसें दुहना। गोठों का पर्स निकालना। कलेवा करके गाय-बकरियों को लेकर बैलना, धनसार या शौलखेत के वनों की ओर निकल जाना।"[५०]

बालक रमेश का जीवन नौ साल तक बड़ा अच्छा रहा। किन्तु दसवें साल में उनके पिता बिशनसिंह ईसाई हो गये और एक अन्य स्त्री के साथ रहने लगे। तबसे लेकर मृत्यु पर्यन्त वे पश्चाताप की आग में तड़पते रहे। अंतिम समय में बेटे से मिलने के लिए खूब मिन्नत-समाजत करना, बेटे (अर्थात् शेलेश) के पहुँचने पर प्राण छोड़ना, मृत्यु-पूर्व अग्नि संस्कार की इच्छा प्रकट

करना, नई माँ के भाई तथा समूचे ईसाई समाज के विरोध के बावजूद उनकी इस अच्छा की पूर्ति होना जेसी घटनाओं का उल्लेख मटियानी जी ने ''लेखक की हैसियत से'' नामक पुस्तक में किया है ।[५१]

पिता की मृत्यु के बाद मां को भयंकर छूत की बीमारी हो जाती है । छाती, सिर और हाथ-पाँव से पीब और मवाद तथा गन्दा खून टपकता रहता था । उसके गन्दे चीथड़ों को यह नन्हा बालक रमेश धोता था । अन्ततः तेरहवें वर्ष में मां का भी निधन हो गया और यहाँ से शुरू होती है उनके अनाथ जीवन की यातना यात्रा ।[५२]

मटियानी तीन भाई-बहन थे- रमेश (शैलेश), उसका छोटाभाई और छोटी बहन । इन तीनों को अपने चाचा-ताऊ के संरक्षण (?) में जीवन व्यतीत करना पड़ा । चाचा-ताऊ का यह परिवार उस ज्वार में जुवारियों का परिवार के रूप में कुख्यात था । ये लोग खूब जुआ खेलते थे । वैभव भी था । घर में दो-दो नौकर थे किन्तु एक तीसरे नौकर के रूप में बालक रमेश को भी काम करना पड़ता था । सन् १९४३ में माता-पिता की मृत्यु के साथ ही मटियानी जी की पढ़ाई का सिलसिला तो टूट जाता है । बीच में पांच-छः वर्ष ऐसे ही बीत जाते हैं । उसके बाद पढ़ाई का तांता फिर शुरू होता है । बाड़े - छीना गाँव के अपर प्राइमरी के प्रधान अध्यापक लक्ष्मणसिंह गेलकोटी थे । प्राइवेट मिडल स्कूल की योजना उनकी ही योजना थी । लक्ष्मणसिंह बकरियाँ चराते हुए रमेश को बार-बार देखते थे । रमेश स्कूल जाते हुए बच्चों को, उनके बस्तों को बड़ी ललक और लाचारदर्जी से देखता रहता था । तब एक दिन लक्ष्मणसिंह उनके कंधे पर हाथ रखकर पूछता है-''क्यों तुम्हारी भी पढ़ने की इच्छा होती है ? जवाब में रमेश फूट-फूटकर रोते हुए भाग गया था ।''[५३]

मटियानी जी का परिवार समाज में बहुत बदनाम था । जुआरियों के परिवार की कुख्याती की मुहर उस पर लगी हुई थी । अतः अधिक पढ़ने-लिखने की परंपरा भी उस परिवार में नहीं थी, न मटियानी के चाचा उसे

पढ़ाना चाहते थे । किन्तु बाड़ेछीना के प्रधान अध्यापक, जिनका ऊपर उल्लेख किया गया है, बालक रमेश के चाचा से कहते हैं-"अपने स्वर्गीय भाई की इस धरोहर को आगे पढ़ाना आपका कर्तव्य होता था, मेरा नहीं । लेकिन यह लड़का तो फिर भी स्कूल जाएगा । इसे आगे पढ़ाना है, मैं यह संकल्प कर चुका हूँ । और यह कल से ही स्कूल आयेगा, यह मेरा ब्रह्मवाक्य है ।"[५४]

यहाँ एक तथ्य की ओर ध्यान आकृष्ट करने का मोह संवरण नहीं कर पा रहा । उपर्युक्त घटना स्वातंत्र्यपूर्व की है । उस समय जातिवाद को लेकर वातावरण कदाचित इतना विषाक्त एवं संकुचित नहीं था । एक ब्राह्मण अध्यापक का गैर-ब्राह्मण परिवार के लड़के के संदर्भ में इस प्रकार का वात्सल्य भाव अब दुर्लभ होता जा रहा है ।

लक्ष्मणसिंह जी सच्चे अर्थों में शिक्षक थे । शिष्य के प्रति उनके मन में जो लगन थी वह अपने योग्य छात्रों में संक्रमित करने की अद्भुत शक्ति उनमें थी । बालक रमेश को उन्होंने कहा था - "अगर तुम्हें जूठे बर्तन घिसने पड़े, औरतों के घाघरे भी धोने पड़े,तो भी विद्याप्राप्ति के इस महत् लक्ष्य से बिमुख न होना ।"[५५]

लक्ष्मणसिंह जी बालक रमेश को बहुत चाहते थे । होशियार बच्चों के प्रति वात्सल्य भाव आदर्श शिक्षक में अपने आप अंकुरित होता है । मृत्यु से कुछ पूर्व बालक रमेश को बुलाकर वे कहते हैं- "रमेश ! तुम्हारे प्रति न जाने कैसा एक अनर्वचनीय मोह हो गया है मुझे । न जाने क्यों मुझे लगता है कि तुम्हें दुलार ओर प्रेरणा की पूँजी देनी चाहिए । न जाने मुझे ऐसा क्यों लगता है कि तुम्हारे हाथ में कुल्हाड़ी, सिर पर लकड़ी का बोझा देखते ही कि तुम्हारी पहुँच इनसे कहीं बहुत परे तक होनी चाहिए ।...और मुझे ऐसा भी लगता है कि तुम अपने कुल की परम्परा को उजागर करोगे । इसलिए मेरी हार्दिक इच्छा है कि तुम्हें शिक्षा के वे सोपान दिए जाएँ,जो तुम्हें एक बहुत ऊँची मंजिल तक ले जा सके । इतनी ऊँची मंजिल तक कि तुम्हें 'जुआरी का बेटा' कहकर चिढ़ाने वाला, तुम्हारे प्रति आदर से झुक जाए, कि कांटों में

खिलनेवाला फूल,वास्तव में और फूलों की अपेक्षा अधिक सुगंध बिखेरता है।''[५६]

आज हम यह महसूस करते हैं कि आचार्य लक्ष्मणसिंह के ये ब्रह्मवाक्य सत्य प्रमाणित हुए हैं। किन्तु यहाँ तक पहुँचने के लिए लेखक को दुर्द्धर्ष संघर्ष-यात्रा से गुजरना पड़ा है। यह एक हकीकत है।

लक्ष्मणसिंह जी की मृत्यु के पश्चात् लेखक के चाचा का रवैया पुनः बदल जाता है। वे उनके तथा उनके भाई-बहनों के प्रति अधिक क्रूर होते जाते हैं। लेखक के छोटे भाई को फुटपाथ पर चूर्ण और मुंगफलियाँ बेचनी पड़ती है। बहन को घरकाम के लिए हररोज बेरहम मार खानी पड़ती है। लेखक ने अलमोड़ा के उच्च माध्यमिक विभाग में आठवीं में प्रवेश तो ले लिया था,किन्तु आगे पढ़ने के लिए चाचा जी ने एक शर्त रखी थी कि उन्हें सुबह-शाम ''शिकार की दुकान'' में काम करना पड़ेगा। इस शर्त के अनुसार स्कूल जाने से पूर्व लेखक को रोज सबेरे उठकर दो-तीन बकरियों की खाल उतारकर,उनका शिकार दुकान में ठीक लगाकर उनकी आँतें साफ करनी पड़ती थी।[५७]

अलमोड़ा के उच्च माध्यमिक विद्यालय में पढ़ते हुए सन् १९५० से लेखक में साहित्यिक संस्कार अंकुराने लगे थे। पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त लेखक स्कूल में आने वाली विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं को पढ़ते थे। आचार्य लक्ष्मणसिंह ने शिक्षा के बीज बोये थे तो कुंवर सिंह तेलोरा उनमें साहित्यिक लेखन के बीज बोते हैं। उनके प्रोत्साहन के कारण मटियानी जी में साहित्यकार होने के सपने तैरने लगते हैं। ''अमर कहानी'' तथा ''रंग महल'' में उनकी उस समय की कविताएँ और कहानियाँ प्रकाशित हुई थी। उक्त पत्रिकाओं के संपादकों ने मटियानी जी को प्रोत्साहित करते हुए लिखा था कि वह यदि इस प्रकार निरंतर लिखने का अभ्यास करता रहा तो एक न एक दिन अवश्य उच्च कोटि का साहित्यकार बनेगा। उन संपादकों की लिखी हुईबात सत्य प्रमाणित हुई है।

जून २००१ के ''हंस'' के संपादकीय में राजेन्द्र यादव लिखते हैं- ''यहाँ मुझे फुटपाथों और घुरों से उठे हुए तीन लेखकों का अनायास ही ध्यान आ रहा है - गोर्की, जेक लंदन और ज्यां जेने । बम्बई की जिस ज़िन्दगी का मटियानी बार-बार जिक्र करते हैं, इन तीन लेखकों के विश्वविद्यालय भी वही थे । उन्हीं ''निचली गहराइयों'' ने गोर्की को संबद्धता की वह वैचारिक ऊर्जा दी जहाँ पर संघर्षशील मानवता के मंत्रद्दष्टा बनकर उभरे । असमानता, सामाजिक अन्याय, शोषण के विरुद्ध लड़ाई, विषमता ओर अमानवीयता से जूझते हुए लोग । ''मां'' जैसा उपन्यास । इस यातना और संघर्ष से जुड़कर शायद मटियानी जी दूसरे गोर्की हो सकते थे, हवर्डफास्ट और स्टीनबेक हो सकते थे । वे जेकलंदन की तरह जंगलों और समुद्रों के भेड़ियों, बाघों, लुटेरों और जल-दस्युओं के खिलाफ अपराजेय जिजीविषा की लोमहर्षक कहानियाँ लिख सकते थे । मटियानी जी ने अपने समाज में जंगली भालुओं, सूअरों, बाघों, भेडियों, साँपों और लुटेरों की अपराधिक दुनिया से मुठभेड़ कम नहीं की थी ।...ज्यां जेने तीसरा लेखक है जो मुझे मटियानी जी के साथ याद आता है । जेने अनाथ था और उसके मां-बाप का पता नहीं था । उसकी सारी शिक्षा चोर, लुटेरों, लफंगों और समलैंगिक हत्यारों की संगत में हुईथी । वह जेलों और जुआ घरों में बड़ा हुआ । उसने इन्हीं अनुभवों पर ''एक चोर की बही''(ए थीफस जर्नल) पुस्तक लिखी ।''[५८]

जीवन के अंतिम वर्षों में पथच्यूत होने के बावजूद भविष्य में मटियानीजी का मूल्यांकन उनके रचनात्मक लेखन के आधार पर होगा और उनका यह लेखन गोर्की, जैक लंदन और ज्यां जेने जैसे विश्वविख्यात लेखकों के समकक्ष ठहरता है, यह कहना अत्युक्ति न होगी । ''हंस'' के इसी अंक में सुप्रसिद्ध कथाकार पंकज बिष्ट लिखते हैं- ''असल में मटियानी जी की त्रासदी मूलतः सामाजिक त्रासदी है जिसे साहित्य के सत्ता-प्रतिष्ठानों के मठाधीसों ने, जो अपनी सत्ता और बल के खिलाफ किसी भी तरह का कोई विरोध या

चुनौती स्वीकार नहीं करते, उन्हें घेरकर बिरादरी बाहर करने की प्रक्रिया और तेज कर दी थी। और इस रूप में मटियानी जी की यह त्रासदी मात्र पुत्र-शोक से कई गुना भयावह थी।...संभव है कि अगर उन्हें इस तरह से अकेला नहीं किया जाता तो पूरी संभावना थी कि वह एक ऐसे क्रांतिकारी लेखक के रूप में उभरते जो हिन्दी साहित्य में प्रेमचंद के ऊपर नहीं तो उनके समकक्ष अवश्य होता। यह बात और है कि वह आज भी प्रेमचंद के बाद के हिन्दी के सबसे महत्वपूर्ण कथाकार हैं।''[५९]

उपर्युक्त विवेचन से इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि मटियानी जी हिन्दी के एक महान लेखक बन सके हैं। किन्तु उन दिनों जब ''अमर कहानी'' तथा ''रंगमहल'' में उनकी कहानियाँ और कविताएँ प्रकाशित होती थी, कुमाऊँ प्रदेश के लोग जो उनकी कुल-परंपरा से परिचित थे बिच्छू की तरह डंख मारने वाले वचन कहते थे। यथा- ''अरे, यह बिशूनवा जुआरी का बेटा और शेरसिंह बूचड़ का भतीजा लेखक बन रहा है। बाप-दादा इसके जुआ खेलते-खेलते खत्म हो गये। चाचा भी सभी बूचड़ और जुआरी ही हैं...और यह लौंडा कविता-कहानियाँ लिख रहा है... घोर कलियुग किसे कहते हैं? जुआरी का बेटा, बूचड़ का भतीजा पंत इलाचंद बनने का सपना देख रहा है।''[६०]

लोगों के ऐसे कटु व्यंग्य-बाणों से पीड़ित होकर बालक रमेश ने तब मानो एक भीषण संकल्प किया था कि ''आज से मेरे जीवन का प्रत्येक क्षण मेरे इस लक्ष्य को समर्पित होगा, कि मुझे साहित्यकार ही बनना है, और कुछ नहीं। ... मैं यह सिद्ध करके ही दिखाऊँगा कि हाँ, जुआरी का बेटा, बूचड़ का भतीजा भी साहित्यकार बन सकता है।... मैं यह सिद्ध कर दूँ कि साहित्य-रचना किसी वर्ग-विशेष की, जाति-पांति की बपौती नहीं है।''[६१]

शैलेश मटियानी जी हाईस्कूल तक की शिक्षा जो पा सके उसमें उनके मंझले चाचा की आर्थिक सहायता, दादी का लाड-प्यार, स्वर्गीय गुरू लक्ष्मणसिंहजी गैलकोटी की प्रेरणा, हाइस्कूल के गुरुवर नारायण दत्त जी

जोशी तथा धर्मानंदजी आदि का योगदान है। किन्तु मटियानी जी के भाग्य में आगे की शिक्षा नहीं लिखी थी। उन्हीं दिनों में उनकी दादी का निधन हो जाता है और घर-परिवार वालों का अत्याचार बढ़ जाता है। तब लेखक अपनी छोटी बहन हीरा को ''फटी हुई झगुली'' तथा छोटे भाई को रामजे हाइस्कूल की फुटपाथ के सहारे छोड़कर चुराये हुए उन्तीस रूपये कुछ आनों के साथ अलमोड़ा से चंपत हो जाते हैं। यह रकम उन्होंने मंझले चाचा के यहाँ से चुराई थी। अलमोड़ा से हलद्वानी होते हुए वे दिल्ली पहुँचते हैं।[६२]

अलमोड़ा से भागने के उपरांत बालक रमेश पहले रानीखेत और हलद्वानी होते हुए दिल्ली पहुँचता है। दिल्ली में ''अमर कहानी'' के संपादक ओमप्रकाश जी की सहायता से चालीस रूपया माहवार की एक नौकरी मिलती है। बालक रमेश पर लेखक बनने का भूत सवार था, अतः ''दो राहा'' नामक एक उपन्यास दो-चार दिनों में लिखकर,उसे पन्द्रह रूपयों में बेचकर इलाहाबाद पहुँचता है। इलाहाबाद में ''माया'' के कार्यालय में कवि श्री शमशेर बहादुर से मुलाकात होती है। शमशेरजी उसको लीडर प्रेस की कैन्टिन में जूठे बर्तन-प्लेट धोने की नौकरी लगाते हैं, किन्तु अपने सपनीले बावरेपन के कारण एक प्लेट टूट जाती है। वहाँ से निकाला जाना, भूखे-प्यासे प्लेटफार्म पर पड़े रहना, ठण्ड के मारे मकान के एक कोने में दुबकना, मकान मालिक का उस पर शक करना, पुलिस को सौंपा जाना, बहादुर गंज के पुलिस थाने के पुलिसवालों का मानवतापूर्ण व्यवहार, दूसरे दिन पुनः शमशेर सिंह जी के पास पहुँचना, शमसेर द्वारा कटु पर खरी बातों का कहना, जिनसे फिर हिम्मत बंधना, शमशेर द्वारा इलाहाबाद स्थित एक महाकवि और साहित्यकार (?) के पास भेजना, शमशेरजी के पत्र के बावजूद उनके द्वारा तिरस्कृत करके निकाला जाना, वहाँ से किसी तरह मुजफ्फर नगर पहुँचना, वहाँ किसी सज्जन के यहाँ महीनों जूठे बर्तन घिसना, झाडू लगाने से लेकर उनकी मैडम के पेटिकोट-ब्लाउज धोने तक का काम करना, वहाँ से पुनः दिल्ली पहुँचना दैनिक ''हिन्दुस्तान'' के भाई ब्रजमोहन जी शर्मासे पाँच रूपये उधार लेकर बिना

टिकट बम्बई (अब मुंबई) पहुँचना,वहाँ अनेक बार बम्बई की पुलिस चौकियों में पड़े रहना; वहाँ फुटपाथों पर पलने-पनपने वाले कुलियों, मजदूरों, भिखमंगों, उचक्कों, उठाईगिरों, गुण्डों ,चोर-बदमाश समझे जाने वाले लोगों से मिलना, उनके भीतरी क्रन्दन को समझना, एक बार घोर निराशा के क्षणों में आत्महत्या का प्रयास, पर फिर संकल्प-बल के कारण निराशा से ऊपर उठते हुए भीष्म-सी प्रतिज्ञा के साथ ''श्रीकृष्ण पुरी हाउस'' में ''छोकरे'' की नौकरी करना कि जब तक स्वंत्र रूप से लेखनजीवी होकर जीने की स्थिति का निर्माण नहीं होगा तब तक कैसी भी भीषण आपत्ति के आने पर भी यह काम नहीं छोड़ूंगा; उस प्रतिज्ञा पर कायम रहते हुए आठ रूपये से बीस रूपये तक की तरक्की करते हुए, आखिर उस क्षण का आ पहुँचना जब भाई नंदकिशोर मित्तल के आग्रह पर बाहर निकलना; वहाँ से सन् १९५६ के दिसम्बर में बम्बई को सलाम करते हुए घर के लिए रवाना होना; तब से लेकर मृत्युपर्यन्त (२४ अप्रैल २००१) केवल लेखन को ही आजीविका का साधन बनाना; पत्रकारिता करना, उसके लिए दर-दर की खाक छानना, पर उसके जरिए ही कुछ समानधर्मा सुधी साहित्यप्रेमियों से मिलना और उनके जरिये अपनी साहित्य साधना को, चेतना के दिये को निरंतर प्रज्वलित रखना, एतदर्थ असाहित्यिक आंदोलनों से मुक्त रहना, गिरोहबाजी से दूर रहकर अपनी एक अलग पहचान बनाना, बड़े-बड़े साहित्यकारों की भी शेह-शरम रखे बिना उन्हें खरी-खरी सुनाना, खब्ती की सीमा तक किसी बात के पीछे पड़ जाना; और इस प्रकार बखूबी दोस्ती व दुश्मनी निभाना; यही है संक्षेप में मटियानी की संघर्ष-यात्रा की कहानी।[६३]

इलाहाबाद में कवि श्री शमशेर ने जो कटु सत्य मटियानीजी को कहा था, वह एक यथार्थ सत्य था और जिसने मटियानीजी की संघर्ष-यात्रा को एक मुकम्मिल रीढ़ प्रदान की। यथा-''भै, रमेश, सीधी-सी बात यह है कि यदि तुम ईमानदारी से ऐसा अनुभव करते हो और तुम्हें अपनी प्रतिभा के प्रति कोई अटूट आस्था न हो, तो तुम साहित्यकार बनने के मोह से मुक्त हो

जाओ । पूरा ध्यान रोजी-रोटी खोजने पर केन्द्रित करो । इससे तुम्हारा मानसिक क्लेश भी कम हो जायगा । और यदि लिखना हो तो फिर इस अपराजेय आस्था के साथ लिखो कि तुम्हें साहित्यकार ही नहीं, महान साहित्यकार बनना है । जितना महत् संकल्प करोगे, उतना ही ऊपर उठ सकोगे,मगर उसी अनुपात में घोर विपत्तियाँ भी झेलनी होगी जैसी कुछ तुम्हारी स्थिति है,उसे देखते हुए यह आवश्यक है, कि तुम कुछ ठोस निश्चय कर लो, अन्यथा व्यर्थ की विपदाएँ तुम्हें घेर लेंगी।''[६४]

शब्द के साधकों को किस प्रकार के संघर्ष से गुजरना पड़ता है उसका बड़ा ही मार्मिक चित्रण मराठी कवि नारायण सुर्वे की कविता में मिलता है, जिसका गुजराती अनुवाद गुजराती के कवि आलोचक सुरेश दलाल ने किया है । उस कविता के कुछ अंश इस प्रकार हैं-

''कविता लखवाने बदले जो मैं रद्दी बेची होत तो कोईनहीं तो छेवटे उघराणी वाराओं नो तकादो तो हुं चुकवी सकते/ पण एम थयु नहीं/ हुं एटलो बधो शब्द नी पाछळ पड्यो/ बेहकी उठ्यो/ जो एम न थयुं होत तो कदाच बंगलाओं बांधी शक्यो होत !/ अमे न होत तो सूर्य, चन्द्र, तारा बिचारा फिक्का थई जात/ अने, हे पूर्वजो ! तमारी व्यथा ने शब्दों मां अमर कोणे करी होत ? जन्म-मरण ना प्रवास मां अमारा शिवाय तमारुं कोण साथ थते ? चालो सारुं थयुं/ अमारे कवितामांज खराब थवानुं हतुं ।''[६५]

यहाँ पर नारायण सूर्वे ने कवि होने के कारण लोगों की ओर से जो उपहास मिलता है, अपमान और तिरस्कार के जो कडुआ घूंट पीने पड़ते हैं उसका अर्थबेधी चित्रण किया है । यह अक्षर की आराधना करने के बदले यदि उसने गलत-सलत दो नंबरी धंधे किये होते तो वह भद्र समाज का व्यक्ति बन सकता । विदेशी शराब की चुस्कियों के साथ अपने वातानुकूलित दीवानखण्ड में बेठ सकता । अपने चार-पाँच कारखाने होते और रूपयों की टकसाल पड़ती । किन्तु कविता के अंत में वह फिर अपना अटल अक्षर-विश्वास व्यक्त करता है कि यदि कवि न होते तो सूर्य, चन्द्र और सितारे फीके पड़ जाते ।

मतलब की सारी कायनात बेमतलब हो जाती। पूर्वजों की व्यथा को शब्दों में कौन उतारता। अर्थात् इस विश्व को विश्व कौन बनाता। अतः अंत में कवि संतोष व्यक्त करता है कि चलो ठीक ही हुआ कि हमें कविता में ही खराब होना था।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि शैलेश मटियानी के व्यक्तित्व में भी नारायण सूर्वे जैसा लौह-संकल्प था, जिसके कारण अनेक वर्षों तक संघर्ष करते हुए हिन्दी के एक शीर्षस्थ कथाकार वे हो सके।

ऊपर एक बात का उल्लेख किया गया है कि शमशेर बहादुर सिंह ने मटियानी को इलाहाबाद के एक महाकवि पर पत्र लिख दिया था। शमशेर बहादुर के पत्र के बावजूद, महाकवि होने के बावजूद उन तथाकथित महान साहित्यकार ने मटियानी जी को तिरस्कृत करके निकाल दिया था। ''तथाकथित''शब्द यहाँ साभिप्राय प्रयोग हुआ है। ऐसे संवेदनाहीन व्यक्ति को साहित्यकार कैसे कहा जा सकता है ? किन्तु मटियानी जी को यह जो अनुभव हुआ उसके कारण वे एक बात मुकम्मिल तौर पर समझ गये कि साहित्यकार बनने का संकल्प दुर्घर्ष जीवन-संघर्षों से कंकरीले-पथरीले दुर्गम मार्गों पर होते हुए आगे बढ़ने पर ही पूरा होगा, बड़े साहित्यकारों की शरण में जाने पर नहीं।[६६]

उपर्युक्त विवेचन में मटियानी जी के जीवन-संघर्ष की कुछ झाँकियों को प्रस्तुत किया गया है। मटियानी जी ने कवि शमशेर बहादुर सिंह की बात को गांठ बांध लिया था कि कुछ भी हो जाए, कुछ भी करना पड़े, परन्तु अपराजेय आस्था के साथ लड़ते-लड़ते न केवल साहित्यकार,बल्कि एक बड़ा साहित्यकार बनना है और अन्त में लेखक की उस अपराजेय आस्था को विजय प्राप्त होती है।

पूर्ववर्ती पृष्ठों में राजेन्द्र यादव तथा पंकज बिष्ट जैसे आधुनिककाल के गणमान्य कथाकारों ने मटियानी जी की गणना हिन्दी के बड़े लेखकों में, लगभग प्रेमचंद के समकक्ष, की है। इससे यह प्रतीत होता है कि ''कलियुग

का यह बहुत बड़ा गुण होता है कि उसमें श्रेष्ठ कर्मों का प्रतिपादन उच्च वर्ग के लोगों की बपौती नहीं रह जाती , बल्कि यदि साधना हो, संकल्प हो और प्रतिभा हो, तो जुआरी का बेटा और कसाई का भतीजा भी साहित्यकार बन सकता है।"[६७]

मटियानीजी ऐसे लेखक रहे हैं जिनको हम विशुद्ध रूप से मसीजीवी कह सकते हैं। हिन्दी साहित्य के अधिकांश लेखक सरकारी, अर्द्धसरकारी या गैर-सरकारी किसी-न-किसी प्रकार के संस्थान से जुड़े हुए हैं। उनके पास आजीविका का एक मुकम्मिल साधन शुरू से ही रहा है। नौकरी करते हुए उन्होंने साहित्य-साधना भी की है, परन्तु गुजरात के लेखक नर्मद की भाँति केवल सरस्वती की गोद में सिर रखकर साहित्य-साधना का काम करने वालों में मटियानी जैसे बहुत कम हैं। बम्बई से लौटने पर मटियानीजी ने अनेक साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं को निकालने का, उनको चलाने का और इस प्रकार लेखन के ही जरिये आजीविका प्राप्त करने का दुर्द्धर्ष संघर्ष किया है। पत्र-पत्रिकाओं के लिए विज्ञापनों की प्राप्ति हेतु उनको दर-ब-दर की ठोकरें खानी पड़ी हैं। उनके अनेक कहानी-संग्रहों में देखा जाता है कि कुछ कहानियों का पुनरावर्तन हुआ है ; किन्तु इसे हम लेखक की आर्थिक विवशता ही कह सकते हैं। जीवन के अंतिम वर्षों में कुछ दक्षिणपंथी पक्षों की ओर उनका झुकाव होता है, जिसे हम एक लेखक का टूटना ही कह सकते हैं। इसके कारण मटियानी जी भी कुछ सुख-सुविधा जरूर प्राप्त कर लेते हैं, परन्तु उनके भीतर का लेखक मानो मर जाता है। मटियानीजी की उत्कृष्टतम कहानियों में इधर की कहानियाँ बहुत कम मिलेंगी और जो मिलेंगी उनमें भी एक सिद्धहस्त लेखक की शैली और शिल्प की खूबी ही बलवती मिलेगी। पत्र-पत्रिकाओं का संपादन करते हुए, उन्होंने जो झेला या भोगा है, उसे हम "आकाश कितना अनंत है" नामक उपन्यास में देख सकते हैं।

इधर मटियानी जी का जीवन कुछ पटरी पर आया था, किन्तु शायद मटियानीजी के भाग्य में सुख लिखा ही नहीं था, क्योंकि कुछ वर्ष पूर्व दंगों

में उनके पुत्र की हत्या हुई थी। ''हंस'' जुलाई-अगस्त अंक में (२००१) जो लम्बी कहानी प्रकाशित हुई है , उसमें मटियानीजी का गहरा पुत्र-शोक व्यंजित हुआ है । जिस मटियानी को बड़े-बड़े संघर्ष नहीं मिटा सके, उसको इस दुःखद घटना ने मिटा डाला। पुत्र की हत्या के बाद वे बीमार हुए तो फिर पूरी तरह से स्वस्थ कभी नहीं हुए। जीवन के अंतिम वर्षों में तो उनकी स्थिति विक्षिप्त-सी हो गई थी अंततः २४ अप्रैल २००१को उनका निधन हुआ।

निष्कर्ष :-

अध्याय के समग्रावलोकन से हम निम्नलिखित निष्कर्षों तक सहजतया पहुँच सकते हैं -

१. आधुनिककाल में गद्य के विकास के साथ अनेक गद्य-विधाओं का उदय हुआ। कहानी भी उन विधाओं में एक है।

२. जो कार्य गुजराती में नर्मद ने किया, लगभग वही कार्य हिन्दी में भारतेन्दु द्वारा संपन्न हुआ।

३. यद्यपि भारतीय साहित्य में कहानी प्राचीन काल से उपलब्ध है, तथापि उस पुरानी कहानी और आज हम जिसे कहानी कहते हैं, उसमें वस्तुगत एवं शिल्पगत पर्याप्त अंतर पाया जाता है । कह सकते हैं कि पुरानी कहानी के केन्द्र में जिज्ञासा और कुतूहल था, तो आधुनिक कहानी के केन्द्र में मानव-चरित्र है ।

४. कथा-साहित्य का प्रकार होने के कारण, कथा-साहित्य की अनेक विधाओं में जैसे उपन्यास, नाटक, रेखाचित्र, रिपोर्ताज आदि से हम कहानी की तुलना कर सकते हैं और इस तरह कहानी के व्यावर्तक अभिलक्षणों को अलगाया जा सकता है ।

५. १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से कहानी-लेखन के कुछ प्रयास हो रहे थे,किन्तु हिन्दी की आधुनिक कहानी हमें बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक से मिलने लगती है । इन प्रारंम्भि कहानियों में ''इन्दुमती''(पं. किशोरीलाल

गोस्वामी), ''दुलाईवाली'' (बंग महिला),''ग्यारह वर्ष का समय''(आचार्य रामचन्द्र शुक्ल), ''ग्राम'' (जयशंकर प्रसाद), ''प्लेग की चुडैल'' (लाला भगवानदीन), ''राखीबन्द भाई''(वृन्दावनलाल वर्मा), ''कानों में कंगना''(राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह) आदि की परिगणना कर सकते हैं, जो सन् १९०० से १९१३ तक में लिखी गई है । इस समय ''सरस्वती'' तथा ''इन्दु'' पत्रिका ने कहानी के विकास में विशेष योगदान दिया है ।

६. पंडित चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' द्वारा प्रणीत ''उसने कहा था''(१९१५) कहानी एक शकवर्ती कहानी है । प्रथम विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि पर लिखी गयी यह कहानी यथार्थ के नये आयामों को छूती है ।

७. हिन्दी कहानी में मुंशी प्रेमचंद का प्रवेश एक शकवर्ती घटना है । यथार्थधर्मी समस्या-प्रयोजन-मूलक कहानी का युग इन्हीं से शुरू होता है ।

८. सन् १९१५ के दौर में सुदर्शन, कौशिक जी और प्रेमचंद का नाम कहानीकारों की बृहतत्रयी में लिया जाता था ।

९. प्रेमचंद जी की चर्चित कहानियों में बलिदान, आत्माराम, बूढ़ी काकी, सवासेर गेहूँ, शतरंज के खिलाड़ी, सुजान भगत, पूस की रात, सद्गति,नमक का दारोगा, ठाकुर का कुआँ, बड़े भाई साहब,नशा,बेटों वाली विधवा, कफ़न आदि की परिगणना कर सकते हैं ।

१०. प्रेमचंद के उपरांत हृदयेश,जयशंकर प्रसाद,जैनेन्द्र, अज्ञेय,इलाचन्द्र जोशी,चन्द्रगुप्त विद्यालंकार,भगवती चरण वर्मा, वृन्दावनलाल वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', सियारामशरण गुप्त, भगवती प्रसाद बाजपेयी, उपेन्द्रनाथ अश्क,यशपाल आदि लेखक कहानी के क्षेत्र में आते हैं । जैनेन्द्र, अज्ञेय और इलाचन्द्र जोशी हिन्दी में मनोवैज्ञानिक कहानियों का सूत्रपात करते हैं । इस समय कुछ महिला-लेखिकाएँ भी इस क्षेत्र में पदार्पण करती हैं, जिनमें शिवरानी देवी, सुभद्राकुमारी चौहान, कमला देवी चौधरी, उषादेवी मित्रा, चन्द्रकिरण सोनरिक्सा, चन्द्रावती जैन और होमवती आदि मुख्य हैं ।

११. कहानी को लेकर अनेक आंदोलन चले हैं और उसके लिए नये नये

नाम भी आये हैं, किन्तु वस्तुतः देखा जाए तो स्वतंत्रता के बाद की कहानी को हम अधिक से अधिक दो विभागों में देख सकते हैं- नयी कहानी और समकालीन कहानी। सन् १९५० के बाद की कहानी को नयी कहानी और पिछले पचीस-तीस साल की कहानी को हम मोटे तौर पर समकालीन कहानी कह सकते हैं।

१२. नयी कहानी के लेखकों में हम फणीश्वरनाथ रेणु,कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव,मोहन राकेश, धर्मवीर भारती, भीष्म साहनी, शैलेश मटियानी, मन्नू भण्डारी, कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा, विष्णु प्रभाकर, डॉ. शिवप्रसाद सिंह, रामकुमार भ्रमर,रमेश बक्षी,मार्कण्डेय, अमरकान्त आदि की गणना कर सकते हैं।

१३. प्रमुख नयी कहानियों में ''डिप्टी कलेक्टरी''(अमरकान्त),''राजा निरबंसिया''(कमलेश्वर), ''बादलों के घेरे''(कृष्णा सोबती), ''गुलाकी बन्नो'' (धर्मवीर भारती), ''रसप्रिया''(रेणु),''चीफ की दावत''(भीष्म साहनी), ''हंसा जाई अकेला'' (मार्कण्डेय), ''आर्द्रा''(मोहन राकेश), ''वापसी''(उषा प्रियंवदा), ''प्रेतमुक्ति''(शैलेश मटियानी), आदि की परिगणना कर सकते हैं।

१४. नयी कहानी के बाद के पड़ाव में हम समकालीन कहानी को ले सकते हैं। समकालीन कहानीकारों में भीष्म साहनी, उषा प्रियंवदा, शैलेश मटियानी,मोहन राकेश,कमलेश्वर,रेणु,अमरकान्त, डॉ. शिवप्रसाद सिंह, रमेश बक्षी,परसाई, निर्मल वर्मा, चित्रामुद्गल, जया जादवानी, संजय, उदय शर्मा, नासिरा शर्मा आदि की परिगणना कर सकते हैं।

१५. मटियानी जी का कृतित्व सन् १९५० से प्रारंभ हुआ और उनका निधन २४ अप्रैल २००१। अतः उनके कृतित्व का युगबोध लगभग एक अर्द्धशती की सामाजिक,राजनीतिक, सांस्कृतिक गतिविधियों को समेटता है। स्वाधीन भारत के समाज का यथार्थ चित्र हमें मटियानी जी की कहानियों में प्रतिबिंबित

होते हुए दृष्टिगत हो सकता है ।

*

सन्दर्भानुक्रम :-

१. द्रष्टव्य : हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ. ३८३
२. उद्धृत द्वारा : डॉ. रामधारी सिंह दिनकरः संस्कृति के चार अध्याय, पृ. ४६६
३. द्रष्टव्य : हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त सुगम इतिहास : डॉ. पारुकान्त देसाई, पृ. ५२
४. वही, पृ. ५२१
५. भारतेन्दु ग्रंथावली : सं. शिवप्रसाद मिश्र : भूमिका, पृ. २५
६. द्रष्टव्य : हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त सुगम इतिहास : डॉ. पारुकान्त देसाई, पृ. ५३
७. वही, पृ. ५३
८. परिक्रमा : हिन्दी साहित्य-२००२ : डॉ. भारत भारद्वाज : हंस-जनवरी-सन्-२००३, पृ.९२
९. काव्य के रूप : डॉ. गुलाबराय, पृ. १९५
१०. देखिए : त्यागपत्र- जैनेन्द्र कुमार; प्रेत -श्रवण कुमार, आदि उपन्यास ।
११. देखिए : चन्द्रकान्ता और चन्द्रकान्ता संतति-बाबू देवकीनंदन खत्री; पहला गिरमीटिया-गिरिराज किशोर; महासमर-डॉ. नरेन्द्र कोहली, जैसे उपन्यास ।
१२. द्रष्टव्य : पूस की रात-प्रेमचंद, खेल- जैनेन्द्र, आदि कहानियाँ ।
१३. द्रष्टव्य : भाभी- जैनेन्द्र, परिन्दा-निर्मल वर्मा, यादों के पहाड़-कृष्णा सोबती आदि कहानियाँ ।
१४. द्रष्टव्य : तंतुजाल- डॉ. रघुवंश ।
१५. द्रष्टव्य : काव्य के रूप : डॉ.गुलाबराय, पृ. १९६ ।

१६. द्रष्टव्य : हिन्दी साहित्य का इतिहास-डॉ. नगेन्द्र, पृ.५१४

१७. द्रष्टव्य : वही, पृ. ४७४-४७५

१८. काव्य के रूप : पृ. २०७

१९. द्रष्टव्य : हिन्दी साहित्य का इतिहास- डॉ. नगेन्द्र, पृ. ५१४

२०. काव्य के रूप : पृ. २०८

२१. द्रष्टव्य : हिन्दी साहित्य का इतिहास-डॉ. नगेन्द्र, पृ.५१४

२२. काव्य के रूप : पृ. २०८

२३.हिन्दी साहित्य का इतिहास-डॉ. नगेन्द्र, पृ.५८०

२४. युगनिर्माता प्रेमचंद तथा कुछ अन्य निबंध : डॉ. पारुकान्त देसाई, पृ.७०

२५.द्रष्टव्य : काव्य के रूप : पृ. २०८

२६. जैनेन्द्र की श्रेष्ठ कहानियाँ : सं. डॉ. निर्मला जैन, पृ. १३

२७. द्रष्टव्य अभिनव कहानियाँ, सं. डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, पृ. २९

२८. प्रकाशवती जी से साक्षात्कारः प्रकाशवतीजी का डॉ. भूलिका त्रिवेदी से साक्षात्कार : लखनऊ- दिनांक१-१-१९८२ : उद्धृत द्वारा : डॉ. भूलिका त्रिवेदी : यशपाल-व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ. १७२

२९. यशपाल का कथा-साहित्य : डॉ. प्रकाशचन्द्र मिश्र, पृ: २२

३०. द्रष्टव्य : बृहत साहित्यिक निबंध : लेख - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी : डॉ. पुष्पपाल सिंह : पृ. २७२-२७३

३१. वही, पृ. २७२

३२. द्रष्टव्य : बृहत साहित्यक निबंध : लेख- स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी : डॉ. पुष्पपाल सिंह : पृ. २७५-२७६

३३. वही, पृ. २७६

३४. द्रष्टव्य : कथान्तर : सं. डॉ. परमानंद श्रीवास्तव, पृ. १९

३५. द्रष्टव्य : कथा साहित्य के सौ वर्ष : सं. डॉ. विभूतिनारायण राय : पृ. ४१७-४८८

३६. द्रष्टव्य : एक दुनिया समानान्तर : सं. डॉ. राजेन्द्र यादव, पृ. १५-१६

३७. द्रष्टव्य : हिन्दी कहानी के अठारह कदम : सं. डॉ. बटरोही, पृ. ५-६

३८. द्रष्टव्य :इण्डिया टु डे, मई, २००१

३९. द्रष्टव्य : हंस,मई, २००१, पृ. ५९

४०. बिजली के फूल : डॉ. पारुकान्त देसाई, पृ. ५४

४१. दो चेहरे : मन्नू भंडारी, हंस, जनवरी-२००३, पृ. १७

४२. वही, पृ. १७

४३. वही, पृ. १७

४४.सूखे सेमल के वृन्तों पर, डॉ. पारुकान्त देसाई,पृ. ५०

४५. वही, पृ. ६९

४६. हंस : अगस्त-२००१, पृ. ९-१०

४७. लेखक की हैसियत से : शैलेश मटियानी, पृ. ७

४८. देसाई साहब की कविताओं की डायरी से ।

४९. मेरी तैंतीस कहानियाँ : शैलेश मटियानी, पृ. ७

५०. वही, पृ. ७

५१.द्रष्टव्य : लेखक की हैसियत से : पृ. ८८-१३६

५२.द्रष्टव्य : वही, पृ. ८८-१३६

५३. वही, पृ. ७६

५४. वही, पृ. ७७

५५. मेरी तैतींस कहानियाँ : भूमिका, पृ. १०

५६. वही, पृ. १०

५७. द्रष्टव्य : वही, पृ. १०

५८. मेरी तेरी उसकी बात : संपादकीय : हंस, राजेन्द्र यादव, जून-२००१, पृ.११

५९. लेख- एक लेखक का टूटना : पंकज बिष्ट : हंस- जून-२००१, पृ. २३-२५

६०. मेरी तैंतीस कहानियाँ : भूमिका, पृ. ११

६१. वही, पृ. १२

६२. द्रष्टव्य : वही, पृ. १३

६३. शैलेश मटियानी का कथा-साहित्य : शोध-प्रबंध, म.स.युनि. बड़ौदा,
डॉ. सलीम वोरा, पृ. ३४-३५

६४. मेरी तैंतीस कहानियाँ : भूमिका, पृ. १६

६५.शब्दलोक : रमेश पारेख : संदेश (गुजराती दैनिक पत्र) : साप्ताहिक पूर्ति :
दिनांक- १६-९-२००२, पृ. ४

६६. भूमिका : मेरी तैंतीस कहानियाँ : भूमिका, पृ. १७

६७. वही, पृ. २०